आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-२० • अंक-६ • फरवरी-२०२६

फाल्गुन शुक्ल-२
श्री सीमंधरादि जिनबिम्ब प्रतिष्ठाका
८६ वाँ वार्षिक दिन

फाल्गुनी अष्टाह्निका पर्व

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

• जो कोई अर्धक्षण भी परमात्मासे प्रीति करता है वह सब पापोंको उसी तरह जला देता है जैसे काठके पर्वतको आग भस्म कर देती है। हे जीव! सर्व चिंता छोड़कर तू निश्चिंत होकर अपने चित्तको परमात्माके पदमें जोड़ और निरंतर शुद्ध आत्मारूपी देवका दर्शन कर। ध्यान करते हुए शुद्धात्माके दर्शन या अनुभवसे जो परमानंद हे, भाई ! तू पावेगा, वह अनंत सुख परमात्मदेवको छोड़कर और कहीं तीन लोकमें नहीं मिल सकता है।१४०। (श्री तारणस्वामी ममलपाहुड, ञग-२, पृ. १७७)

• जो यह ज्ञानस्वरूप आत्मा ध्रुवपने और अचलपने ज्ञानस्वरूप होता हुआ परिणमता भासता है वही मोक्षका हेतु है। कारण कि वह स्वयं मोक्षस्वरूप है, उसके सिवाय जो अन्य कुछ है वह बंधका हेतु है कारण कि वह स्वयं बंध स्वरूप है। इसलिये ज्ञानस्वरूप होना (ज्ञानस्वरूप परिणमना) अर्थात् कि अनुभूति करनेका आगममें विधान अर्थात् आदेश है।१४२। (श्री अमृतचंद्राचार्यदेव, समयसार टीका, कलश-१०५)

• जो जीवात्माको निरंतर कर्मोंसे बंधा हुआ देखता है वह कर्मसे बंधा हुआ ही रहता है। परन्तु जो उसे मुक्त देखता है वह मुक्त हो जाता है, बराबर है। मुसाफिर जिस नगरके मार्गमें चलता है उस ही नगरमें वह पहुँचता है।१४३।

(श्री पद्मनंदि आचार्य, पद्मनंदि पंचविंशति, निश्चय पंचाशत, श्लोक-४८)

• अपने आत्मारूपी कमलमें रुचि या प्रीति वही कारण है, वही कार्य है। आत्मरुचिसे ही प्रतीति गाढ़ होती जाती है। चतुर्थ गुणस्थानमें जो आत्मरुचिरूप सम्यग्दर्शन है वही बढ़ते-बढ़ते श्रुतकेवली मुनिको अवगाढ़ सम्यक्त्व हो जाता है। आत्मरुचि ही दातार है, आत्मरुचि ही पात्र है, अपने आपको मनन करनेसे आत्माका स्वभाव पुष्ट होता जाता है। आत्माकी गाढ़ रुचिके सामने कोई दातार नहीं है। सम्यग्दर्शन ही आत्मानंद प्रदान करता है। आत्माको पुष्ट करते-करते उसको सिद्ध बना देता है।१४४। (श्री तारणस्वामी, ममलपाहुड, भाग-१, पृ. ९०)

• जो मोक्षका किंचित् कथनमात्र (कहनेमात्र) कारण है उसे भी (अर्थात्) व्यवहार-रत्नत्रयको भी भवसागरमें डूबे हुए जीवने पहले भव-भवमें (अनेक भवोंमें) सुना है और आचरा (आचरणमें लिया) है, परन्तु अरेरे ! खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है उसे (अर्थात् जो सदा एक ज्ञानस्वरूप ही है ऐसे परमात्म तत्त्वकी) जीवने सुना और आचरा नहीं है—नहीं है।१४५। (श्री पद्मप्रभमलधारिदेव, नियमसार-टीका, श्लोक-१२१)

वर्ष-20
अंक-6

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2082
February
A.D. 2026

परमागम श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन

(गाथा ८०-८२ के प्रवचनमेंसे)

अर्हंतके स्वरूपको जानने पर स्व आत्मस्वरूपको जानता है।

अब इस प्रकार मैंने चिंतामणि प्राप्त किया है—ऐसा आचार्य भगवान कहते हैं। संसारमें रत्नोंको चिंतामणि भी कहा जाता है। वह तो पुण्य हो तो फल मिले और वह भी संयोगकी प्राप्तिमें निमित्त होता है लेकिन उससे आत्माकी शांति धर्म होता नहीं है।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीकी हजारों देव सेवा करते थे, १४ रत्नों थे, वैताढ्य पर्वत पर जब जाय तब हाथी पर रत्न रखे तो सूर्य समान प्रकाश हो जाय और जोजन तक उजाला हो जाय, हीरेके पलंग थे, सोलह हजार देव सेवा करते थे, ९६००० रानियाँ थीं। नरक जानेका समय आया तब चिंतामणि रत्न होने पर भी क्यों नरकमें गया ? देवों, नोकरों, रानियाँ, हजारों सभी ''खम्मा...खम्मा'' करनेवाले खड़े रहे। पुण्य समाप्त हुआ तब कोई काम नहीं आता है। एक समय पूर्व देवों आदि खम्मा..खम्मा कर रहे थे और हीरेके पलंगमें सो रहा था, दूसरे समय सातवीं नरकमें–जहाँ मारना-काटना और असह्य वेदना है–वहाँ जन्म होता है। इसलिये बाहरके चिंतामणि रत्न धूल है उसमें कुछ नहीं है। लेकिन वास्तविक चिंतामणि तो आत्मा है उसके पास शांति मागो ते मिले ऐसी है। उसकी श्रद्धा करनेसे समकित होता है और एकाग्र करनेसे वीतरागदशा और कैवल्यदशा प्राप्त होती है। ऐसे चिंतामणिकी आचार्य भगवानने प्राप्ति की है। फिर भी स्वरूपकी प्राप्ति असावधानी-प्रमाद-वह चोर है ऐसा विचार

करके जाग्रत रहता है अर्थात् स्थिरताका उग्र पुरुषार्थको बताता है।

गाथा-८१ : जिसने दर्शनमोहका नाश किया है और आत्माके यथार्थ स्वरूपको प्राप्त किया है ऐसा जीव यदि राग-द्वेषको छोड़े तो वह शुद्ध आत्माकी प्राप्ति करता है। स्वरूपमें लीनता करे तो राग-द्वेष उत्पन्न होता नहीं है। वह राग-द्वेषको छोड़ता है–ऐसा कहनेमें आता है। जिस जीवने दर्शनमोहका नाश किया नहीं उसके राग-द्वेष भी कदापि छूटते नहीं है।

टीका : इस प्रकार जो उपायका स्वरूप कहनेमें आया है उस उपायसे मोहका नाश करना और सम्यक् आत्मतत्त्वको प्राप्त करना। तीर्थंकरों आदि सभी ज्ञानियों स्वयंके आत्माकी यथार्थ प्रतीति करके आत्मामें लीनता करके केवलदशाको प्राप्त हुए हैं। उसी उपायसे सम्यग्दृष्टि जीव राग-द्वेष निर्मूल करते है। (राग-द्वेष उपशम करता है वह बात लिया नहीं है।) मूलमेंसे नाश करता है तो शुद्धात्माका अनुभव करता है। लेकिन किंचित् मात्र प्रमादके वश होकर अस्थिरताका राग-द्वेषका अनुसरण करे तो प्रमादके आधीन होने पर स्थिरता होनी चाहिये वह होती नहीं है इसलिये शुद्ध आत्मतत्त्वके अनुभवरूप चिंतामणि चोरी हो जाने पर खेदको प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शनरूपी चिंतामणि तो है लेकिन चारित्ररूपी चिंतामणि हाथमें नहीं रहनेसे खेदको प्राप्त होता है। प्रमाद द्रव्यमें नहीं है लेकिन प्रमादके आधीन स्वयं होता है और उससे शुद्ध अनुभव विशेषरूप चालु रहता नहीं है इसलिये मुझे अस्थिरताके राग-द्वेषका नाश करनेको अत्यंत जागृत रहना आवश्यक है–ऐसा आचार्य भगवान कहते है। यहाँ आचार्य भगवान पुरुषार्थकी उग्रता और केवलदशा प्राप्तिकी इच्छा बतलाते है।

अभेद रत्नत्रयपरिणत जीव निर्मल ज्ञानघन एक शुद्धबुद्ध स्वभावको प्राप्त करता है और केवलदशाको पाता है इसलिये वह समकितको प्राप्त हुआ पश्चात् मुनिपनेमें तीन कषायका अभाव वर्तता है फिर भी छठवें गुणस्थानकमें रहता हुआ राग-द्वेष नाश होनेसे वीतरागदशा होती है ऐसा यहाँ कहा है यह निमित्तका कथन है। स्वमें स्थिर होने पर राग-द्वेष उत्पन्न ही होते नहीं है और उसके राग-द्वेषका नाश होता है और मुक्त होता है–ऐसा कहनेमें आता है।

पूर्वमें गाथा ८०-८१में कहे अनुसार ही अनंत तीर्थंकरोंने अनुभव करके दर्शाया हुआ मोक्षका पारमार्थिक पंथ एक ही है—ऐसा निश्चित करके मतिको स्थिर करते है।

गाथा ८२ : सभी अर्हंत भगवंतों अर्थात् तीर्थंकरों आदिने ८०-८१ गाथामें दर्शाया

तत जासु मेघराय मंगला सु कही माय,
नगरी अजोध्याके अनेक गुण गाऊये।

अनुसार ज्ञानावरणादि कर्मोंका क्षय करके तथा उसी प्रकार उपदेश करके मोक्षको प्राप्त हुए है। उनको नमस्कार हो। अपने द्रव्य, गुण, पर्यायकी श्रद्धा, ज्ञान करके स्वरूपमें लीनताको प्राप्त कर अर्हंत भगवंत मोक्ष गये है। देहकी क्रियासे अथवा पुण्यसे धर्म हो—ऐसी मान्यता करके कोई मोक्षमें गये नहीं है।

टीका : भूतकालमें एकके बाद एक हुए समस्त तीर्थंकर भगवंतों अपने ज्ञानस्वरूपकी प्रतीति, ज्ञान तथा लीनता—एक ही प्रकारसे मोक्षमें गये है। क्रमशःका अर्थ एकके बाद एक-ऐसा है लेकिन 'आदि' है–ऐसा समझना नहीं, तीर्थंकरो अनादिसे है। एकके बाद एक हुए है ऐसा बतलाना है। आत्मा अनादिसे है और सिद्ध, साधक तथा वीतरागी धर्म और मिथ्यादृष्टि भी अनादिसे है और सिद्ध, साधक तथा वीतरागी धर्म और मिथ्यादृष्टि भी अनादिसे है। आत्मा केवलज्ञानको प्राप्त हो तब केवली भगवानका शरीर नग्नदशामें होता है। किन्तु वस्त्र, पात्र, आहार, रोग आदि होता नहीं है। तीर्थंकर एक समयमें तीनकाल, तीन लोकको जानते है। छद्मस्थके जैसी उनकी वाणी होती नहीं है। इच्छा बिना ओमकार ध्वनि–अनक्षरी वाणी सहज होती है।

तीर्थंकर परम आप्त (परम विश्वासपात्र) है; भाव मुनिओं तथा सम्यग्दृष्टि जीव आप्त (विश्वासपात्र) है। तीर्थंकर संपूर्ण वीतरागदशाको पाकर केवलज्ञानको प्राप्त हुए है। इसलिये वे परम आप्त पुरुष है। वे मुमुक्षुओंको उपदेश देते है कि वर्तमान और भविष्यकाल अर्थात् सभी काल अपने ज्ञानस्वभावकी प्रतीति, ज्ञान और स्वभावमें स्थिरता–यह एक ही मोक्षप्राप्तिका अथवा कर्मनाश करनेका उपाय है–ऐसा उपदेश स्वयंने किया है और इसी उपायसे स्वयं केवलज्ञानको प्राप्त हुए है।

वस्त्र अथवा वेष अथवा शरीर नग्न हुआ इसलिये चारित्र हुआ–ऐसा नहीं है। बाह्यकी क्रिया या पुण्यकी क्रियासे धर्म नहीं है। ज्ञानानंद स्वभावमें रमना वह चारित्र है—यह एक ही प्रकार कहा है। बीचमें व्यवहार आता है वह विष है। उसका ज्ञान कराया है। ज्ञातास्वभावमें ठहरने पर ज्ञानक्रिया होती है वह क्रिया है। जैसा स्वरूप है वैसा प्रकट करना–ऐसा यथार्थ उपदेशदाता तीर्थंकर भगवंत है। उनकी निमित्तरूप वाणी न हो ऐसा नहीं हो सकता। वस्तु कथंचित् वक्तव्य है अर्थात् आत्माका स्वरूप कथंचित् वाणीमें आता है। जो स्वरूप सर्वथा अवक्तव्य हो तो वाणी निमित्तरूप नहीं होती लेकिन यह बात यथार्थ

ध्वजापै विराजै गज पेखे पप जाय भज,
त्रिकोटनकी महिमा देखे न अघाईये.

नहीं है। स्वरूप कथंचित् वक्तव्य है। आचार्य भगवान कहते है कि ''प्रलाप बस होओ, विशेष क्या कहे मेरी गति व्यवस्थित हो गई है, भगवानने कहा वह ही उपाय है अब मुझे शंका नहीं है—भगवंतोंको नमस्कार हो !''

प्रश्न : आचार्य भगवानके नमस्कारके शुभभावको आप पुरुषार्थ कहते हो और अन्यके शुभभावको विष क्यों कहते हो ?

उत्तर : आचार्य भगवानको पुरुषार्थकी उग्रता है। विकल्प उत्पन्न हुआ वह ज्ञाताका ज्ञेय है। रागके लिये राग नहीं, पूर्ण साध्यकी ओर उग्र पुरुषार्थ है। ८०वीं गाथा जब लिखी उससे ८२वीं लिखी उसमें पुरुषार्थकी वृद्धि हुई है। जो समय समय पर वृद्धिगत हो रहा है। वास्तवमें नमस्कार अपने अभेद द्रव्यको किया है, और विकल्प आया इसलिये व्यवहारसे भगवंतोंको नमस्कार किया है। व्यवहार करते करते कर्मक्षय होगा–ऐसा इस गाथामें नहीं आया। कर्मक्षयका एक ही मार्ग कहा है।

प्रश्न : लेकिन भगवानने तो चार अनुयोग कहा है न ?

उत्तर : चारों अनुयोगका सार एक ही है। अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्रसे आत्मा मोक्षको प्राप्त होता है—ऐसा समझे तो चारों अनुयोगका अर्थ समझा कहा जायेगा। चरणानुयोगमें दया, दान, करते करते अथवा महाव्रत करते करते या नग्न शरीरसे धर्म होगा–ऐसा कहा नहीं लेकिन साधकदशामें ऐसे प्रकारका शुभभाव आता है और शरीरकी अवस्था नग्न होती है उसका ज्ञान कराया है। करणानुयोगमें कर्मके कारण जीव भवभ्रमण करता है ऐसा कहा नहीं है। कर्म जीवको भवभ्रमण करते नहीं है लेकिन अपनी भूलके कारण जीव भ्रमण करता है तब अन्य वस्तु कर्म उपस्थितिमात्र है—उसका ज्ञान कराया है। ज्ञानी पुरुष सभी अनुयोगका खंडन करता है और अज्ञानी जो कर्मसे और पुण्यसे धर्म मानता है। वह चरणानुयोग, करणानुयोग आदि सभी अनुयोगका खंडन करता है। इसलिये द्रव्यानुयोग शास्त्रको और अन्य दूसरे अनुयोगके शास्त्रका विरोध नहीं है लेकिन सभीका सार एक ही है कि अपने ज्ञानस्वभावकी प्रतीति करे तो मुक्ति होती है।

समयसार गाथा १५में जो कहना है वही यह प्रवचनसारकी ८२वीं गाथामें आया है। यहाँ प्रवचनसारमें ज्ञान अधिकार है। ज्ञानका स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है। ज्ञान उपदेशकी वाणीको बतलाता है और समयसार गाथा १५में श्रुतज्ञानकी बात की है। (क्रमशः)

तिहूं लोकमध्य इस अतिशै चौतीस लसै,
ऐसे जगदीश 'भैया' भलीभांति ध्याईये। ८

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं. ४४-४५ (गाथा-४१)

धर्मात्मा चक्रवर्ती ९६००० रानियोंके बीचमें खड़े हो, क्षणिक वासनाका विकल्प आ जाता है उसे अपनी कमजोरी समझते है लेकिन विकल्पमें समाधान होता नहीं इसलिये वासनाको पूर्ण करते दूसरी क्षणमें ध्यानमें बैठ जाते है और आत्माका अनुभव करते है।

देखो यह दशा ! क्षण पूर्व वासना और क्षण पश्चात् आत्माकी स्पर्शना, दृष्टिमें रागका आदर नहीं है इसलिये उसमें विशेष ठहरते नहीं है।

यहां तो वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा सम्यग्दृष्टिका मार्ग बतलाते है कि सम्यग्दृष्टिको स्वयंके शुद्ध स्वरूपमें लीन होना और बीचमें कोई विकल्प आ जाय तो उसे तुरन्त ही भूल जाना। संयमके हेतुसे कोई विकल्प आये कि ममता कम करने दान देनेका भाव आये अथवा कोई शुभाशुभ विकल्प आये उसे बंधके कारण जानकर छोड़ देना।

दसलक्षण धर्ममें त्यागधर्म आता है तो लोग किसीको पुस्तक देना, ज्ञानदान देना, वस्त्रादि देना उसे त्यागधर्म कहते है। अरे भाई ! वह त्यागधर्म नहीं है, वे तो शुभ विकल्प है। त्यागधर्म तो रागका अभाव करके स्वभावमें लीन होना वह है। विकल्प आता है उसे धर्मी बंधभाव जानते है।

लोग कहते है कि यह एकांत है... एकांत है। हा, यह सम्यक् एकांत है। एकांत वीतरागता प्रकट करनेका मार्ग है। राग प्रकट करनेका मार्ग नहीं है। वस्तुका स्वरूप-धर्मका स्वरूप क्या है उसकी प्रथम यथार्थ समझ होनी चाहिये। भाई ! चारित्रकी बात तो पश्चात्की है। प्रथम श्रद्धा तो यथार्थ कर।

लोग तीर्थंकरगोत्रका बंध हो उसमें लाभ मानते है, लेकिन जो तीर्थंकर प्रकृति कर्ममें बंधती है वह तो जड़ रजकण है और उसका उदय तो भगवानको केवलज्ञान होनेके पश्चात् आता है। उसमें समवसरण आदिकी रचना होती है उससे भगवानको क्या लाभ है ? कुछ भी नहीं। शुभबंध या उसके फलमें कहीं भी धर्मीको लाभ दिखाई देता नहीं है।

अब पूज्यपादस्वामी धर्मीका विशेष स्वरूप बताते ४१वीं गाथामें कहते हैं।

श्री सूरप्रभ जिन-स्तुति	सूरप्रभ अरहंत, हंत करमादिक कीन्हें, कीन्हें निज सम जीव, जीव बहु तार सु दीन्हें;

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नन्ति न पश्यति॥४१॥
देखे पण नहीं देखता, बोले छतां अबोल,
चाले छतां न चालता, तत्त्वस्थित अडोल. ४१.

जिसने आत्मस्वरूपके विषयमें स्थिरता प्राप्त कर ली है, भगवान ज्ञायक चिदानंदकी दृष्टि-ज्ञान करके अनुभव प्राप्त किया है ऐसा योगी धर्मात्मा बोलता है तदपि बोलता नहीं है अर्थात् कि वाणीके कर्ता नहीं है, ज्ञाता है। चलते है तदपि चलते नहीं है और देखते हुए भी देखते नहीं है।

''जिनके हियेमें सत्यसूरज उद्योत भयो,
फैली मती किरण, मिथ्यात्व तम नष्ट है।
जिनके कटाक्षमें सहज मोक्षपंथ सधै,
मनको निरोध जाके तनको न कष्ट है।
तिनके करमकी कल्लोंके-यह है समाधि,
डोले यह जोगासन, बोले यह मष्ट (मौन) है।

बनारसीदासजी समकितका स्वरूप बताते हुए कहते है कि जिनके अंतरमें सम्यक्त्व सूरज उदित हुआ है उनके सम्यग्ज्ञानरूपी किरणोंसे मिथ्यात्व-अंधकारका नाश हुआ है और मोक्षपंथ सुगम बना है। मन-वचन-कायाका निरोध हुआ है उसे स्वभावकी शांतिरूपी समाधि वर्तती है ऐसा सम्यग्दृष्टि डोलता है फिर भी योगासनमें है। क्योंकि चलनेकी, बोलनेकी क्रिया तो जड़में होती है, उसमें मैं नहीं हूँ। हूं तो मेरे ज्ञानस्वरूपमें हूँ ऐसा धर्मी जानता है।

देखो, यह वीतरागीमार्ग ! जिन्हें गणधरोंने पसंद किया, इन्द्रोंने माना, मुनिओंने अनुभवमें लिया और सम्यग्दृष्टिओंने जिन्हें अंतरमें स्वीकार किया वह यह मार्ग है।

सम्यग्दृष्टि धर्मी बोलते है कदपि मौन है क्योंकि उनकी दृष्टिमें रागका भी संग नहीं तो वाणीका संग कहांसे होगा ? शुभरागसे भी धर्मीका आसन पृथक् है। धन और धाममें धर्मी कदापि मग्न होता नहीं है, सभी ओरसे वैरागी होकर रहता है।

(शेष देखे पृष्ठ २७ पर)

दीन्हें रवि पदवास, वास विजयामहि जाको,
जाको तात सुनाग, नाग भय माने ताको,

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

सम्यक्त्वसंबंधी व निर्विकल्प अनुभवसंबंधी बहुत सुंदर स्पष्टीकरण हुआ; अब साधर्मिओंके पत्रमें जो अन्य प्रश्न लिखे हैं उनके उत्तर देते हैं।

मति-श्रुतज्ञान वह केवलज्ञानका अंश है क्योंकि दोनोंकी एक जाति है

''भाईजी ! तुमने तीन दृष्टांत लिखे एवं उन दृष्टांतोंके बारेमें प्रश्न लिखे; परन्तु वे दृष्टांत सर्वाङ्गरूपसे नहीं मिलते; क्योंकि दृष्टांत है वह एक प्रयोजनको दिखाता है। यहाँ द्वितीयाका विधु अर्थात् चन्द्रमा, जलबिन्दु तथा अग्निकणिका ये तो तीनों एकदेश हैं, और पूर्णमासीका चन्द्र, महासागर तथा अग्निकुण्ड–ये सर्वदेश हैं। उसी प्रकार चौथे गुणस्थानमें आत्माके ज्ञानादिक गुण एकदेश प्रगट हुए हैं उनकी, और तेरहवें गुणस्थानमें आत्माके ज्ञानादिकगुण संपूर्ण प्रगट होते हैं उनकी एक जाति है।

इसमें तुमने प्रश्न लिखा कि 'एक जाति है तब तो जैसे केवली सर्व ज्ञेयको प्रत्यक्ष जानते हैं वैसे चौथे गुणस्थानवाले भी आत्माको प्रत्यक्ष जानते होंगे ?'–परन्तु भाईजी ! वहाँ प्रत्यक्षताकी अपेक्षासे एक जाति नहीं है परन्तु सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षासे एक जाति है...''

जैसे पूर्णिमाका अंश दोज, समुद्रका अंश जलबिन्दु और बड़े अग्निकुण्डका अंश एक अग्निकण, इन दृष्टांतोंमें तो क्षेत्र अपेक्षासे अंश–अंशीपना है, परन्तु आत्मामें जो श्रुतज्ञानको पूर्णज्ञानका अंश कहा उसें अंश अंशीपन क्षेत्र अपेक्षासे नहीं किन्तु भाव अपेक्षासे हैं; क्षेत्र तो दोनोंका एक ही है। जैसे दोजका चान्द उदित होनेपर चन्द्रका थोड़ासा क्षेत्र खुला और शेष ढका हुआ है वैसे आत्मामें कहीं थोड़े प्रदेश निरावरण हुए और अन्य प्रदेश आवरणवाले रहे–ऐसा नहीं है। परन्तु जैसे पूर्णचन्द्र प्रकाश देता है वैसे दोजका चांद भी प्रकाश देता है, प्रकाश देनेका स्वभाव दोनोंमें एकसा है, एक पूरा प्रकाश देता है, दूसरा अल्प प्रकाश देता–इतना ही फर्क है, वैसे यहाँ आत्मामें केवलज्ञान पूर्ण प्रकाश देता है,

ताको अनंतबलज्ञानधर, धर भद्रा अवतार जी;
जिहं भावधारि भवि सेवहीं, वहि नरिंद लहि मुक्तश्री। ९

प्रकाश देनेका स्वभाव दोनोंमें एकसा है, अतः दोनोंकी एक ही जाति है। इस प्रकार इनमें अंश-अंशित्व समझना। जैसे दोज है वह तवेका टुकड़ा नहीं है किन्तु चन्द्रका टुकड़ा (भाग) है, वैसे मति-श्रुतज्ञान भी ज्ञानका ही अंश है, वह रागका अंश नहीं है। मति-श्रुतका व केवलज्ञानका क्षेत्र तो समान ही है, अतः इनका अंश-अंशीपन क्षेत्रकी अपेक्षासे नहीं किन्तु भावकी अपेक्षासे है। ऐसे ही तीनों ही दृष्टांतोंमें योग्यरूपसे समझ लेना।

विशेष यह है कि, तेरहवें गुणस्थानका केवलज्ञान व चौथे गुणस्थानका सम्यक् मतिश्रुतज्ञान–इन दोनोंके सम्यक्पनेकी अपेक्षासे एक जाति है; परन्तु जैसे केवलज्ञान समस्त पदार्थोंको, असंख्य-आत्मप्रदेश आदिको भी प्रत्यक्ष साक्षात् जानता है वैसा मतिश्रुतज्ञान प्रत्यक्ष नहीं जानता; अतः प्रत्यक्षपनेकी अपेक्षा तो इन दोनोंमें समानता नहीं है परन्तु जाति अपेक्षासे समानता है। मतिज्ञान या केवलज्ञान आदि सभी ज्ञानोंको सामान्य ज्ञानस्वभावके साथ ही एकत्व है। यही बात आचार्यदेवने समयसारमें (गाथा २०४)में कही है—

मति-श्रुत-अवधि-मनः-केवलज्ञान सब ही एक ही पद जु है।
वो ज्ञानपद परमार्थ है, जो पाय जीव मुक्ति लहे॥२०४॥

ज्ञानसामान्यके ही ये सब विशेष हैं, अतः ज्ञानको ही ये सब भेद अभिनंदन करते है, इन सबकी एक ही जात है इनमें प्रत्यक्ष-परोक्ष आदि भेद है परन्तु जातिभेद नहीं है। दैसे किसी बनियेके पासमें पूंजी अधिक हो, कोईके पास कम हो, दोनोंमें पूंजीके प्रमाणके भेद हैं परन्तु जातिभेद तो नहीं है, वणिक जातिकी अपेक्षासे दोनों समान ही हैं। वैसे केवलज्ञानका सामर्थ्य बहुत अपार, और मतिश्रुतका सामर्थ्य अल्प,–ऐसे सामर्थ्यके भेद होने पर भी दोनोंकी जाती एक ही है, सम्यग्ज्ञानरूपसे दोनों समान ही हैं। और स्वानुभवके समयमें तो मतिश्रुतज्ञान भी प्रत्यक्ष जैसा हो जाता है।

श्रुतज्ञानमें भी ऐसी बेहद ताकत है कि केवलज्ञानके अनुसार सभी तत्त्वोंको जान ले। यहाँ प्रयोजनभूत तत्त्वकी अपेक्षा यह बात समझनी। केवलज्ञानके अनुसार सभी प्रयोजनभूत परोक्ष निर्णय श्रुतज्ञान भी कर सकता है। यद्यपि सभी क्षेत्रको व तीनकालके समयोंको भिन्न-भिन्नरूपसे वह नहीं जान सकता तो भी अपने हित-अहित सम्बन्धी प्रयोजनभूत तत्त्वोंको तो वह श्रुतज्ञान भी केवलज्ञानके अनुसार ही जानता है, उनमें विपरीतता नहीं होती; भले वह केवलज्ञान जैसा प्रत्यक्ष न जाने परन्तु उसमें विपरीतता नहीं होती। इस अपेक्षासे इनमें एक जातिपना समझना। (क्रमशः) ✻

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

❊ समाधि-वर्णन ❊

आत्मशान्ति अथवा आत्माके धर्मको अनुभव प्रकाश तथा मोक्षमार्ग कहते हैं। वह मोक्षमार्ग कैसे प्रकट हो? सो कहते हैं।

यह समाधिकी बात है। जहाँ इन्द्रियविकार बलका विलय हुआ है—मनविकार नहीं है वहाँ समाधि है। आत्मामें कर्म और शरीरका बल ही नहीं है वहाँ समाधि है। आत्मामें कर्म और शरीरका बल ही नहीं है, क्योंकि आत्मा परसे निवृत्तस्वरूप है, निमित्तसे निवृत्तस्वरूप है—ऐसा जिसने निर्णय नहीं किया है वह विकारसे निवृत्त नहीं हो सकता, इसलिए प्रथम निर्णय करना चाहिए कि—इन्द्रियादि परनिमित्तोंका मुझमें जोर नहीं है, तब इन्द्रियविकारका विलय होता है। इन्द्रियविकार अर्थात् अशुभभाव जो कि इन्द्रियोंके निमित्तसे होते हैं; इतना ही इन्द्रिय विकारका अर्थ नहीं है, परन्तु भगवानके दर्शन करना, शास्त्रश्रवणादि करना वह सब इन्द्रियविकार है। परसे—निमित्तसे लाभ माना उसके इन्द्रियविकारका विलय नहीं हुआ है।

निमित्तसे लाभ–हानि होते हैं—ऐसा माना उसको निमित्तका पक्ष छूटा ही नहीं है अर्थात् निमित्तका परिग्रह नहीं छूटा है और जिसने विकारका बल है ऐसा माना उसने आत्मामें विकारका नाश करनेका सामर्थ्य है—ऐसा नहीं माना है।

यह समाधि अधिकार है; तो वह समाधि किसे होती है? कि—जिसको निमत्तकी भी रुचि छूट गई और इन्द्रियोंके निमित्तसे होनेवाले विकारभावकी भी रुचि छूट गई हो और आत्माकी यथार्थ रुचि हुई हो। आत्मा चिदानन्द त्रिकाल शुद्ध है, उसके आश्रयसे ही धर्म होता है।—ऐसी दृष्टिपूर्वक अंतर्लीनता हुई उसे यहाँ समाधि होना कहा है। जिसको निमित्तका बल नहीं छूटा उसे विकारका बल तीनकालमें नहीं छूटता। आत्मामें शुभाशुभ परिणाम होते हैं वह विकार है। भगवानके दर्शनका विकल्प वह शुभ भाव है और स्त्रीको देखनेका भाव वह अशुभभाव है—वे दोनों विकार हैं। निमित्तसे वे शुभाशुभ भाव हुए हैं

श्री विशाल जिन-स्तुति	नाथ विशाल तात विजयापति, विजयावति जननी जिनकी, धन्य सु देश जहां जिन ऊपजे, पुंडरगिरि नगरी तिनकी;

ऐसा जिसने माना उसके तो निमित्तका परिग्रह नहीं छूटा है, इसलिए उसको विकारकी पकड़ भी नहीं छूटी है।

सच्चे देवादिकी श्रद्धा तथा पंचमहाव्रतादिका विकल्प है वह मनका विकार है। जिसे आत्माके आश्रयसे शुद्ध परिणति प्रकट हुई है, अनाकुल शांतरसरूप समाधि प्रकट हुई है उसे मनका विकार नहीं होता। यही धर्म है और यही मोक्षमार्ग है।

जिसे यह खबर नहीं है कि आत्मा शांत समाधिरूप है, उसे पुण्यकी रुचि नहीं छूटती। पर्यायमें दानका शुभविकल्प होता है वह भी मनोविकार है। पहले तो जिसने निमित्तका बल माना उसे तो निमित्तकी पकड़ है और फिर जिसने व्यवहारसे धर्म माना है उसके विकारका परिग्रह नहीं छूटता—ऐसी दो बातें कही हैं।

आत्माकी शान्ति कोई लूट नहीं गया है, तथा वह परमें नहीं भरी है। आत्मा स्वयं शान्तिरूप है ऐसा ज्ञान, रुचि करनेसे होता है। जिसने निमित्तसे धर्म–शान्ति मानी है उसकी निमित्तबुद्धि नहीं छूटती। परके कारण आत्मामें कोई लाभ–हानि नहीं होते और आत्माके विकल्पसे परमें कुछ नहीं होता—ऐसा जानना चाहिए। मेरी वस्तु तो मेरे पास है, परके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु मेरी पर्यायमें विकार होता है उतना मात्र मैं नहीं हूँ।—ऐसी अन्तर्दृष्टि होने पर समाधि जागृत होती है।

आत्मामें वह आनन्दस्वाद आया उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। अब, वह आनन्द होनेसे पूर्व कैसा विकल्प होता है वह कहते हैं। मैं आनन्द हूँ, मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ—ऐसा विचार कुछ काल तक रहता है। पश्चात् समाधिमें अहंपना तो छूटता है, अस्मि कहें ऐसा भाव वहाँ रहता है। वहाँ दर्शन–ज्ञानमय हूँ, मैं समाधिमें लगता हूँ। ऐसे ही रहूँ यह विचार होता है। मैं ज्ञाताद्रष्टा हूँ—ऐसा विकल्प होना वह भी शुभराग है। उसका अभाव होनेसे स्वरूपमें स्थिरता होती है। ज्ञान–दर्शन या विकल्प उसे यहाँ द्रव्यश्रुत कहते हैं। निमित्त, रागकी रुचि छूट जानेके पश्चात् ज्ञान सो आत्मा, दर्शन सो आत्मा—ऐसे विकल्पको द्रव्यश्रुत कहते हैं। उस गुण–गुणीके भेदका विकल्प मिटता है तब समाधि प्रकट होती है।

जबतक विकल्प था तबतक तो पुण्यबंधका कारण था, फिर जब द्रव्यश्रुतका भी विकल्प छूट गया और आत्मामें एकत्व हुआ वह समाधि है। ऐसा धर्मका स्वरूप है—ऐसी जिसे खबर नहीं है वह कदाचित् दया, दान, भक्ति एवं व्रतादिके परिणाम करता हो

लच्छन इन्दु बसहि प्रभु पायें, गिनै तहां कोन सुरगनकी,
मुनिराज कहै भविजीव तरे, सो है महिमा महीमें इनकी। १०

तथापि उसे धर्म नहीं होता। आत्मा कौन है? उसे जानकर गुण–गुणीका भेद मिटाकर अन्तर्लीनता हो उसे धर्म होता है। धर्मकी विधि तो पहले जानना चाहिए। विधि जाने बिना धर्म नहीं होता। प्रथम विकल्प होता है, परन्तु उस विकल्पके कारण निर्विकल्प नहीं हुआ जाता—ऐसा जानना चाहिए। आत्मा परमानन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि करनेसे विकल्पका अभाव होता है—ऐसी विधि है।

सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रकी खबर नहीं है और व्रत करें तो धर्म हो जायगा—ऐसा जो मानता है वह विधिको नहीं समझता। जिसे घी–गुड़ और आटेका हलुवा खाना हो उसे प्रथम विधि समझना पड़ती है। विधि जाने नहीं और पानीमें आटा डाल दे तो हलुवा नहीं बनेगा। वैसे ही पहले सम्यग्दर्शनादिका स्वरूप न जाने और व्रतादि शुभभावसे धर्म हो जाएँगा ऐसा माने उसे धर्म या मोक्षमार्ग नहीं होता।

आत्मा शुद्ध चिदानन्द है, उसकी रुचि करनेसे तथा उसकी लीनतासे समाधि होती है और वही वीतरागरूप स्वसंवेदनभाव है। जब एकत्वचेतनामें मन लगाकर लीन हुआ वहाँ इन्द्रियजनित आनन्दके अभावसे स्वभावका लक्ष होने पर रसास्वादन करके आनन्दकी वृद्धि हुई। वहाँ विवेकरूपी शुद्धपरिणति है। जहाँ परमात्माका विलास निकट हुआ वहाँ अनन्त गुणोंका रस आया फिर परिणामवेदी समाधि लगी, निर्विकार धर्मके विलासका प्रकाश हुआ।

परसे विभक्त हुआ अर्थात् स्वसे एकत्व हो गया—वह अस्ति–नास्तिकी बात है। अनन्त गुणोंका परिणमन शुद्ध हुआ, इसलिए अंतर्समाधि प्रकट हुई, निर्विकार धर्मके विलासका प्रकाश हुआ। रागादिरहित भावनामें मनोविकार छुट गया। पहले प्रतीति हुई कि मैं ज्ञान हूँ; विकार नहीं हूँ, पर नहीं हूँ; वहाँ तो रागादि विकारके स्वामित्वका नाश होता है और आगे चलकर स्थिरता होते–होते शुद्धिमें वृद्धि होती है और मनका विकार भी नष्ट होता है।

ऐसी समाधि–स्वरूप दृष्टिपूर्वक स्थिरता करके स्वभावकी शान्ति प्रकट की उसे भगवान तप कहते हैं। ऐसा तप करके भगवानने केवलज्ञान प्रकट किया है। लोगोंको तपकी भी खबर नहीं है। तपको जगत कष्टरूप मानता है। स्वभावमें स्थिरता और परभावोंका विस्मरण हो ऐसी लीनता करनेसे निकट भविष्यमें परमात्मा होते हैं। यह सहजका धंधा है। जो इसे कष्टरूप मानता है उसे वस्तुकी खबर नहीं है। (शेष देखे पृष्ठ २७ पर)

श्री वज्रधर जिन-स्तुति	अहो तेरोई	प्रभु सुजस	पदमरथ, तिहूंपर	राजाके गाईयतु	नंदनसु, है;

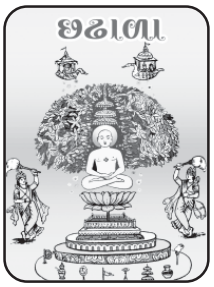

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(तीसरी ढाल, गाथा ४-५-६)

जीवतत्त्व और उसके भेदोंका वर्णन

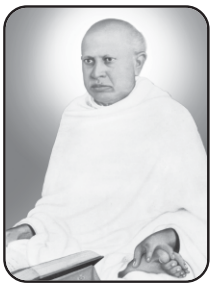

यह छहढालाके रचनाकार दौलतरामजी भजनमें सम्यग्दृष्टिकी दशाका वर्णन करते हुए कहते है कि–

चिन्मूरत दृगधारिकी मोहे रीति लगत है अटापटी...
बाहिर नारकि-कृत दुःख भोगे, अंतर सुखरस गटाहटी।
रमत अनेक सुरनि संग पै तिस परिणतितें नित हटाहटी।
ज्ञान विराग शक्तितें विधिफल भोगत पै विध घटाघटी।
सदन निवासी तदापि उदासी, तातैं आस्रव छटाछटी।
जे भवहेतु अबुधके ते तस करत बन्ध की झटाझटी।
नारक पशु त्रिय षंड विकलत्रय, प्रकृतिनकी कटाकटी।।
संयम धरि न सके पै संयम धारन की उर चटाचटी।
तास सुयश गनकी 'दौलत' के लगी रहै नित रटारटी।।

अहो ! चैतन्यमूर्ति आत्माकी दृष्टिके धारक सम्यग्दृष्टि जीवोंकी दशा कोई अटपटी आश्चर्यकारक लगती है। कोई जीव नरकमें सम्यग्दृष्टि हो, बाह्यमें तो नारकीओं द्वारा घोर दुःख हो रहा हो लेकिन अंतरमें तो उस समय भिन्न आत्मामें उसे आत्माके सुखरसकी गटागटी चलती है; जैसे गन्नेका रस गटक-गटक पीए वैसे अंतरमें चेतनामें सुखरसकी गटागटी चलती है—ऐसे सम्यग्दृष्टिकी परिणति अटपटी है। कोई जीव स्वर्गमें सम्यग्दृष्टि हो, वहाँ बाह्यमें तो अनेक देवीओंके साथ क्रीड़ा कर रहा हो उस प्रकारका राग हो लेकिन उस परिणतिसे तो उसे सदा हटाहटी है, अर्थात् कि धर्मीकी चेतना तो उससे पृथक् ही रहती है–ऐसी धर्मीकी विचित्र परिणति है।

केई तव ध्यान धरै, केई तव जाप करै,
केई चर्णशर्णतरै जीव पाईयतु है,

अनेक प्रकारके कर्मफल भोगने पर भी, ज्ञान-वैराग्यशक्तिके बल से उसे कर्म सदा घटते ही रहते है; सदन निवासी अर्थात् गृहवास होने पर भी अंतरमें उससे उदासीनता है इसलिये आस्रवकी उसे छटाछटी है,–आस्रव छूटते ही जाते है। अज्ञानीको जो क्रियाएँ भवका हेतु होती है वे क्रियाएँ अंतरकी चैतन्यदृष्टिके कारण सम्यग्दृष्टिको बंधकी झटाझटी करता है–अर्थात् उसे निर्जरा ही होती है।

नरकगति, तिर्यंचगति, स्त्रीपर्याय, नपुंसकपर्याय, विकलत्रय आदि ४१ प्रकृति तो सम्यग्दृष्टिको निरंतर कटाकटी हो गई है अर्थात् ४१ प्रकृतिका तो उन्हें बंध है ही नहीं।

वह अविरत सम्यग्दृष्टि जो संयम धारण कर सकता नहीं तदपि उसके अंतरमें तो संयम धारण करनेकी चटाचटी वर्तती है....निरंतर संयमभावना वर्तती है।

अहा ! सम्यग्दृष्टिके ऐसे प्रशंसनीय गुणोंका भंडार, उसका दौलतरामजीको हमेशा चिंतवन रहा करता है।

वाह ! चैतन्यमूर्ति आत्माकी दृष्टिवाले सम्यग्दृष्टि–अंतरात्मा जीवोंकी दशा कोई अद्भुत-अचिंत्य-आश्चर्यकारी है; उसकी पहिचान करते जीव तो स्वयंके आत्मस्वरूपकी कोई अचिंत्य महिमा लक्षमें आती है। वह अंतरात्मा उत्कृष्ट हो, मध्यम हो, या जघन्य है, लेकिन शुद्धात्माकी प्रतीतरूप सम्यग्दर्शन सभीको समान है; प्रतीतमें अंतर नहीं है, सभीका अंतरात्मा भूतार्थदृष्टिवंत है, शुद्ध चैतन्यकी दृष्टिके धारक है। राग होने पर भी रागसे पार उनकी ज्ञानचेतना है उसे कोई विरल व्यक्ति ही पहिचान सकता है।

भावलिंगी मुनिओंमें भी जो निर्विकल्प ध्यानमें लीन है ऐसे शुद्धोपयोगीको तो उत्तम अंतरात्मा गिने और शुभोपयोगी मुनिको मध्यम अंतरात्मा गिनना। अरे, महाव्रतादिकी कोई शुभवृत्ति आयी वह भी उत्तम अंतरात्माको कामकी नहीं है, तो अन्य रागकी क्या बात ! प्रवचनसारमें भी कहा है कि मोक्षमार्गमें शुद्धोपयोगी मुनि मुख्य है, अग्रेसर है, और शुभोपयोगी मुनिओंको तो उसके पीछे-पीछे स्वीकार किया गया है। है तो दोनों मोक्षमार्गी, परमेष्ठी भगवान; उसमें शुभवाले मुनि भी भावलिंगी है,–उसकी बात है। जिन्हें सम्यग्दर्शनादि नहीं उसका तो मोक्षमार्गमें स्वीकार ही नहीं है, वे तो बंधमार्ग पर चलनेवाले बहिरात्मा हैं।

बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा—यह तीन प्रकारमें जगतके सभी जीव आ जाते हैं।

नगर सुसीमा सिधि ध्वजापैं विराजै शंख,
मातुसरस्वतिके आनंद बधायतु है;

जीवतत्त्वकी श्रद्धामें उसकी पहिचान समाहित हो जाती है। जो स्वयं शुद्धोपयोगमें लीन है उन्हें तो अन्य जीवोंका विचार उस समय नहीं है; और तीन भेद भी पर लक्ष नहीं है; लेकिन जो सविकल्पदशामें है वे व्यवहारजीवकी श्रद्धामें ऐसे त्रिविध आत्माका स्वरूप विचार करते है। ऐसा यथार्थ विचार करनेवाला अंतरात्मा है। बहिरात्माको या परमात्माको ऐसा विचार नहीं, क्योंकि बहिरात्मा तो उसका यथार्थ स्वरूप जानता नहीं है, और परमात्माका कोई विकल्प नहीं। यह तो साधकको निश्चय सहित व्यवहार कैसा हो उसकी बात है।

परमार्थदृष्टिमें अर्थात् कि शुद्धनयमें तो एक अखंड ज्ञायकभावरूप जो आत्माका अनुभव है, तीन प्रकारकी पर्यायके भेद उसमें नहीं आते, शुद्धदृष्टि द्वारा अंतरात्मा हुए जीव व्यवहारमें जीवकी पर्यायके प्रकारोंको भी जैसे है वैसे जानते है। स्वयं अंतरात्मा होकर तीन भेदोंको जानते है; लेकिन स्वयं बहिरात्मा रहकर तीन प्रकारके आत्माका यथार्थ ज्ञान हो सकता है।

छठवें गुणस्थानवाले भावलिंगी मोक्षमार्गी मुनि ऐसा जानते है कि अविरत सम्यग्दृष्टि जीवों भी मोक्षमार्गी है; जैसे मैं मोक्षमार्गी हूं वैसे वह भी मोक्षमार्गी है।—चाहे अल्प (जघन्य) भी है लेकिन है तो मोक्षके मार्गमें। श्री कुन्दकुन्दस्वामीने मोक्षप्राभृतमें उसे धन्य कहा है। अहा! छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि चौथेवाले गृहस्थको मोक्षमार्गमें स्वीकार करते है : 'ये तीनों शिवमगचारी' तीन प्रकारके अंतरात्मा मोक्षमार्गमें केलि करनेवाले हैं —

'केलि करे शिवमारगमें, जगमांहि जिनेश्वरके लघुनंदन।'

इस प्रकार अंतरात्माकी बात की; अब परमात्मा कैसे है ? उन्हें कहते है : परमात्माके दो प्रकार—एक सिद्ध परमात्मा; दूसरे अरिहंत परमात्मा। सिद्ध भगवान तो अशरीरी, चैतन्यबिंबरूप सिद्धालयमें अनंता विराजते हैं, उनको शरीर नहीं होनेसे 'निकल परमात्मा' कहा जाता है। और अरिहंत भगवान ढाईद्वीप सम्बन्धी मनुष्यलोकमें तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान शरीर सहित विचरते है, उन्हें 'सकल परमात्मा' कहते है। (कल= शरीर; उससे सहित वह सकल; उससे रहित वह निकल)। केवलज्ञानादि गुणों उन दोनों परमात्माको समान है। परमात्माकी क्या बात ! उन्हें पहिचानते ही आत्माका यथार्थ स्वरूप पहिचानमें आ जाता है। (क्रमशः) ✻

वज्रधरनाथ साथ शिवपुरी करो कहि,
तुम दास निशदीस शीश नाईयतु है। ११

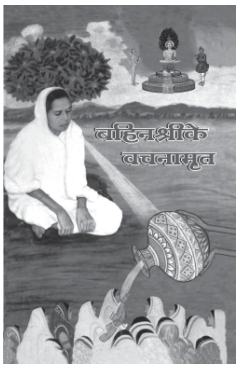

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनके वचनामृतों पर परम पूज्य सद्गुरुदेव श्रीकानजीस्वामीके प्रवचन

वचनामृत-२

अंतरकी गहराईसे अपना हित साधनेको जो आत्मा जागृत हुआ और जिसे आत्माकी सच्ची लगनी लगी, उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी। आत्माकी सच्ची लगन लगे और अंतरमें मार्ग न हो जाय ऐसा हो ही नहीं सकता। आत्माकी लगन लगनी चाहिये; उसके पीछे लगना चाहिये। आत्माको ध्येयरूप रखकर दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिये। 'मेरा हित कैसे हो?' 'मैं आत्माको कैसे जानूँ?'—इसप्रकार लगन बढ़ाकर प्रयत्न करे तो अवश्य मार्ग हाथ लगे॥ २॥

'अंतरकी गहराईसे अपना हित साधनेको जो आत्मा जागृत हुआ और जिसे आत्माकी सच्ची लगन लगी, उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी।'

क्या कहते हैं? कि अंतरकी गहराईसे—ऊपर-ऊपरसे या एकदम कल्पना करके ऐसा नहीं—ध्रुवकी ओर ढलनेके लिये गहराईसे अपना हित साधनेके लिये,–बाह्य किसी प्रकारसे 'हितसाधन' नहीं हो सकता–जो आत्मा अंतरसे जागृत हुआ और जिसे आत्माकी सच्ची लगन लगी,—किसीको दिखाने–बतानेके लिये नहीं—उसकी आत्मलगन ही उसे मार्ग कर देगी।

परका—दुनियाका—कोई कुछ भी हित नहीं कर सकता। अंतरमें भगवान आत्माको साधनेकी—आत्महित प्राप्त करनेकी—सच्ची लगन जिसे लगी है उसे, आत्माकी वह सच्ची लगन ही उसका मार्ग कर देगी। अन्य कोई विकल्प या कोई देव–शास्त्र–गुरु आदि निमित्त साधन हों, देव–गुरुकी कृपा हो जाये तो मिल जाये–ऐसा वस्तुस्वरूपमें है ही नहीं। तेरी अंतरकी सच्ची लगन ही तुझे तेरा मार्ग देगी।

'आत्माकी सच्ची लगन लगे और अंतरमें मार्ग न हो जाय ऐसा हो ही नहीं सकता।'

श्री चंद्रानन जिन-स्तुति	चंद्राननजिनदेव सेव सुर करहिं जासु नित, पद्मासन भगवंत, डिगत नहि एक समय चित;

भीतर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा ध्रुव ज्ञायक है ना ? उसकी ओर विश्वासपूर्वक जिसे लगन लगी है उसे अंतरमें मार्ग मिले बिना नहीं रहेगा।

'आत्माकी लगन लगनी चाहिये; उसके पीछे लगना चाहिये।'

व्यवहारके विकल्प नहीं, निमित्त नहीं, उनका बहुमान और महिमा नहीं, परन्तु आत्माकी ही लगन लगनी चाहिये; ज्ञायक, ज्ञायक, ज्ञायक शुद्ध, उसके पीछे लगना चाहिये। उसके समीप जाना चाहिये। अहा ! कितनी संक्षिप्त भाषा है ! आत्मा एकमात्र ज्ञायक ध्रुव पूर्णानंदसे भरपूर प्रभु है, उसके पीछे—उसके समीप, उसके सन्मुख—लगना चाहिये। कमाने की कैसी लगन लगती है ? स्वप्न भी उसीके आते हैं ! उसका पल्ला छोड़ना नहीं चाहिये। अंतरमें पूर्णानंदका नाथ प्रभु अस्तिरूप है, विद्यमान वस्तु है, उसके पीछे अर्थात् समीप जाना चाहिये; बाहरसे हटना चाहिये।

'आत्माको ध्येयरूप रखकर दिन-रात सतत प्रयत्न करना चाहिये।'

भगवान आत्माको ध्येयरूप रखकर, ध्रुवधामको ध्येय बनाकर, दिन और रात निरन्तर पुरुषार्थ करना चाहिये। कठिन है वस्तु ! ध्रुव ज्ञायकधामकी धुन लगनी चाहिये; उसकेपीछे पागल हो जाना चाहिये; उसके लिये सतत प्रयत्न करना चाहिये। अहा ! यह तो केवल मक्खनके लौंदे हैं !.....आया कुछ समझमें ?

'मेरा हित कैसे हो ?' 'मैं आत्माको कैसे जानूँ ?' —इसप्रकार लगन बढ़ाकर प्रयत्न करे तो अवश्य मार्ग हाथ लगे।'

मेरा हित किसप्रकार हो ? परका हित तो आत्मा कर नहीं सकता। पर तो जहाँ होगा वहाँ रहेगा, परमें तेरी चिन्ता निरर्थक है। शरीर, वाणी, कर्म या पर जिस क्षेत्रमें, जिस स्थितिमें जैसे हैं वैसे रहेंगे; तेरी चिन्तासे, जो जहाँ हैं वहाँ से परिवर्तित होंगे ऐसा नहीं है। उन्हें करने–फेरनेकी तेरी चिन्ता व्यर्थ जायेगी। मेरा हित किस प्रकार हो ? मैं आत्माको किस विधिसे जानूँ ? ऐसी अंतरंग उत्कंठा बढ़कर प्रयत्न करे तो मार्ग अवश्य मिलेगा।

अहा ! समयसारकी छठवीं गाथामें–वह शुद्ध आत्मा कौन है कि जिसका स्वरूप जानना चाहिये ?–ऐसा शिष्यका प्रश्न अंतरकी उमंगसे है। शिष्यने दूसरी कोई बात नहीं पूछी है। छह द्रव्य, उनके गुण और पर्यायें, देव–शास्त्र–गुरु आदि कुछ नहीं, किन्तु शुद्ध आत्मा है वह कौन, कि जिसका स्वरूप जानना चाहिये ? ऐसी उमंगवाले शिष्यको श्री अमृतचन्द्र-

पुंडरिनगरी जनम, मातु पदमावति जाये,
वृषलच्छन प्रभुचरण, भविक आनंद जु पाये;

आचार्यदेव उत्तर देते हैं। सामान्य बेगार के रूपमें सुनने आये कि कुछ न कुछ सुनना चाहिये; –ऐसी बात यहाँ नहीं है। शिष्य जिज्ञासासे सुनने आया है; निकट आकर नम्रतापूर्वक पूछता है; उसका उत्तर दिया गया है।

समयसारकी एक-एक गाथा गजबकी बात है भाई ! उसमेंसे फिर यह बहिनका निकाला हुआ मक्खन ! यहाँ ऐसा प्रश्न किया कि–मेरा हित कैसे हो ? और वहाँ छठवीं गाथामें उसका उत्तर है। अहा ! वह शुद्धस्वरूप है कौन कि जिसका स्वरूप जानना चाहिये ? ऐसी शुद्धके स्वरूपको समझनेकी जिज्ञासा और उमंग उठी है, गुरु कहते हैं कि उसके लिये हमारा उत्तर है। उसे इसप्रकार का विकल्प उठा है तो यहाँ भी उसी प्रकारका विकल्प उठा है। उसके लिये उत्तर कहा है कि ज्ञायक है वह शुद्ध है। मेरा हित क्या है ? शुद्धको साधना वह हित है; बाकी सब बातें हैं।

विशेष कहना भी न आये, दुनियाको समझाना भी न आये, उससे कहीं वस्तु चली नहीं जाती। सिर्फ मेरा नाथ शुद्ध है तो उसका स्वरूप क्या है ? बस, वह हमें जानना है। हमारा प्रभु अंतरमें शुद्ध—जो आप शुद्ध आत्माकी व्याख्या करते हैं वह एकत्व-विभक्त—कौन है प्रभु ! कि जिसका स्वरूप जानना चाहिये ? यहाँ कहते हैं कि–मेरा हित कैसे हो ? मैं आत्माको किस प्रकार जानूँ ? अहा ! थोड़ेमें बहुत भरा है। लोगोंकी माँग थी कि 'वचनामृत' पर प्रवचन हों। तब ऐसा लगा कि सबके हाथमें पुस्तक हो तो ठीक रहे। अब तो बहुत पुस्तकें छप गई हैं। वह एक पुस्तक प्रकाशित हुई है ना ?–'अध्यात्म-पीयूष'; वह भी पाँच हजार छपी है। इस वचनामृत पुस्तकमेंसे थोड़ासा चुनकर छपायी है। नाम रखा है 'अध्यात्म-पीयूष'। अध्यात्म-पीयूष अर्थात् अध्यात्मका अमृत।

यहाँ तो बस, एक ही बात है कि मैं आत्माको—मेरा जो स्वरूप है उसे—कैसे जानूँ ? शास्त्र आते हों या नहीं आते हों, बोलना आता हो या नहीं आता हो, समझना आता हो या नहीं आता हो–उसका मुझे कुछ काम नहीं है; सिर्फ मैं आत्माको किस प्रकार जानूँ ? समझनेमें भी यदि ऐसा लक्ष रहे कि कुछ ग्रहण कर लूँ तो फिर मैं भी दुनिया के सामने कुछ रखूँ, अपनी बात अच्छी लगी तो लोग संतुष्ट होंगे, ऐसा हेतु नहीं है। यह बात मोक्षमार्ग प्रकाशकमें कही है। यहाँ तो कहते हैं कि मैं आत्मा को—मेरा नाथ जो शुद्धस्वरूप है उसे—किस प्रकार जानूँ ? उसकी विधि क्या है ?

जस धर्मचक्र आगें चलत, इतिभीति नासंत सब,
सुत वाल्मीक विचरंत जहं, तहं तहं होत सुभिक्ष तब। १२

समयसारकी ७३वीं गाथाके शीर्षकमें शिष्यका प्रश्न है कि–आस्रवसे निवृत्ति होनेकी विधि क्या है ? पुण्य-पापके भावसे–आस्रवोंसे–लाभ हो वह तो प्रश्न है ही नहीं, परन्तु उससे निवर्तनकी विधि पूछी है। आस्रव करनेसे लाभ हो और वह करनेकी विधि क्या है ?–यह प्रश्न तो उसके उड़ ही गया है। वर्तमानमें तो इसमें बड़ी आपत्तियाँ हो गई हैं। उन आस्रवोंसे निवर्तनकी विधि क्या है ? ऐसा पूछा तब कहा कि—सर्वज्ञ परमेश्वरने आत्माको जैसा देखा है वैसा विकल्पसे निर्णय कर; फिर विकल्पको छोड़ दे।

सर्वज्ञ भगवानने आत्मा—जो असंख्यप्रदेशी है वह—देखा वैसा अन्य किसीने नहीं देखा। आत्माके असंख्यप्रदेशीपनेकी बात सर्वज्ञ भगवानके सिवा अन्य किसी जगह–कहीं नहीं आती। इसलिये सर्वज्ञ भगवानने देखा है ऐसा आत्मा प्राप्त करनेकी—आस्रवसे निवर्तनकी–विधि क्या है ? तो कहा कि–पहले विकल्पसे निर्णय कर, दूसरे कहते हैं उससे भिन्न करनेके लिये। आत्मा असंख्यप्रदेशी द्रव्य है, उसके सर्व प्रदेशोंमें अनन्त गुण हैं, उसकी अनन्त पर्यायें हैं—ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है।

अपने हितके लिये प्रथम विकल्पसे निर्णय करने लगा कि–मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममत्वहीन हूँ तथा ज्ञान-दर्शनपूर्ण हूँ आदि। निर्णय होनेपर विकल्प तोड़कर वह भीतर प्रवेश करेगा। अहा ! यह उपदेशकी शैली अन्य प्रकारकी है ! पाँच इन्द्रियाँ आदि सब बाह्य विकल्प छोड़कर अन्तरसे निर्णय करता है कि—मैं शुद्ध हूँ, अखण्ड हूँ, अनादि-अनन्त हूँ, कर्त्ता-कर्म-करण आदि कारकोंके भेदसे रहित त्रिकाल अनुभूतिस्वरूप हूँ। वहाँ अनुभूति त्रैकालिक है, पर्यायकी बात नहीं है। अहा ! अद्‌भुत कार्य किया है। सन्तोंने तो जगतको निहाल कर दिया है ! आत्मा जैसे हथेली पर रखकर दिखाया है कि—यह देख, देख यह; जरा दृष्टि तो डाल। तेरी दृष्टि परमें है उसे स्वोन्मुख कर !

मैं आत्माको किसप्रकार जानूँ ? इस प्रकार अंतरसे लगन लगाकर—भले वह है तो विकल्प—प्रयत्न कर। अवश्य मार्ग हाथ आयेगा।

प्रश्न :—विकल्पसे साध्य होता है ?

उत्तर :—विकल्प है तथापि ऐसा करके छोड़ते हैं अंतरमें। वह विकल्प टूटकर अवश्य हाथ आयेगा। लगन लगे कि 'यह, यह, यह',–इतना भेद है ना ? लगन आत्मामें

(शेष देखे पृष्ठ २७ पर)

श्री चंद्रबाहु जिन-स्तुति	लक्षण पद्म रेणुका जननी, नगर विनीत जिनको गांव, तीन लोकमें कीरति जिनकी, चंद्रबाहु जिन तिनको नांव;

धर्मी जीवकी सात तत्त्वोंकी श्रद्धा

(१) ज्ञायकभावके साथ जीवकी अभेदता है—ऐसी श्रद्धा हुई, उसमें ज्ञायकस्वभावी जीवकी प्रतीति आ गयी।

(२) अपने ज्ञायकभावकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होनेवाले जीवका अजीव के साथ एकत्व नहीं है; तथा अपनी क्रमबद्धपर्यायरूपसे उत्पन्न होनेवाले अजीव का जीवके साथ एकत्व नहीं है;—इस प्रकार अजीवतत्त्वकी श्रद्धा भी आ गयी।

(३–४) अब ज्ञायकभावरूपसे परिणमित होनेवाला साधक–जीव उस–उस कालके रागादिको भी जानता है–किन्तु उन रागादिको अपने शुद्ध जीवके साथ तन्मय होकर नहीं जानता, उन्हें आस्रव–बन्धके साथ तन्मय जानता है–इस प्रकार आस्रव और बन्ध तत्त्वोंकी श्रद्धा भी आ गयी।

(५–६) ज्ञायकस्वभावके आश्रयसे अपनेको श्रद्धा–ज्ञान–आनन्द आदि के निर्मल परिणाम होते हैं, वह संवर–निर्जरा है, उसे भी ज्ञानी जानते हैं, और इसलिए संवर–निर्जराकी प्रतीति भी आ गयी।

(७) संवर–निर्जरारूप अंशमें शुद्धपर्यायरूपसे तो स्वयं परिणमित होता ही है, और पूर्ण शुद्धतारूप मोक्षदशा कैसी होती है–वह भी प्रतीतिमें आ गया है, इसलिए मोक्षतत्त्वकी श्रद्धा भी आ गयी।–इस प्रकार ज्ञायकभावकी क्रमबद्धपर्यायरूपसे परिणमित जीवको सातों तत्त्वों की प्रतीति आ गयी है।

अज्ञानीके सात तत्त्वोंमें भूल

(१–२) अज्ञानीको अपने ज्ञायकभावकी खबर नहीं है और शरीरादि अजीवकी क्रमबद्धपर्यायोंको मैं बदल सकता हूँ–ऐसा वह मानता है, यानी अजीवके साथ अपनी एकता मानता है, इसलिए उसकी जीव–अजीवतत्त्वकी श्रद्धामें भूल है।

(३–४) और जो शुभरागादि पुण्यभाव होते हैं, वे आस्रवके साथ तन्मय हैं, उसके बदले उन्हें धर्म मानता है, यानी शुद्ध जीवके साथ एकमेक मानता है; इसलिए उसकी आस्रव–बन्ध तत्त्वोंकी श्रद्धामें भूल है।

(५–६) आत्माकी शुद्ध वीतरागीदशा संवर–निर्जरा है, उसके बदले पंच महाव्रतादि के शुभरागको संवर–निर्जरा मानता है, इसलिए संवर–निर्जरा तत्त्वकी श्रद्धामें भूल है।

(७) और मोक्षका कारण भी उसने विपरीत माना, इसलिए मोक्षकी श्रद्धामें उसकी भूल है। —इस प्रकार अज्ञानीकी सातों तत्त्वोंकी श्रद्धामें भूल है।

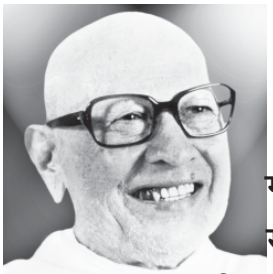

पूज्य गुरुदेवश्रीके हुई साथ रात्रिचर्चा

प्रश्न :–शुद्धात्माकी रुचिरूप सम्यग्दर्शनको निश्चयसम्यग्दर्शन कहा गया है। उस निश्चयसम्यग्दर्शनके सराग सम्यक्त्व और वीतराग सम्यक्त्व ऐसे दो भेद क्यों ?

उत्तर :–निश्चय सम्यग्दर्शनके साथ वर्तते हुए रागको बतानेके लिए निश्चय सम्यक्त्वको सराग सम्यक्त्व कहा जाता है। वहाँ सम्यग्दर्शन तो निश्चय ही है, परन्तु साथमें प्रवर्तमान शुभ रागका व्यवहार है, अतः उसका सम्बन्ध बतानेके लिए सराग सम्यक्त्व कहनेमें आता है। गृहस्थाश्रममें स्थित तीर्थंकर, भरत, सगर आदि चक्री तथा राम, पाण्डव आदिको सम्यग्दर्शन तो निश्चय था तथापि उसके साथ वर्तते हुए शुभरागका सम्बन्ध बतानेके लिए उन्हें रागादि सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। यहाँ मूल प्रयोजन वीतरागता पर वजन देना है। इसलिए निश्चय सम्यक्त्व होने पर भी उसे सराग सम्यक्त्व कहा गया है और उसे वीतराग सम्यक्त्वका परम्परा साधक कहा है। शुद्धात्माकी रुचिरूप निश्चय सम्यग्दर्शनमें सराग और वीतरागके भेद नहीं है। है तो एक-सा सम्यग्दर्शन, किन्तु जहाँ स्थिरताकी मुख्यताका कथन चलता हो वहाँ सम्यक्त्वके साथ वर्तते हुए रागके सम्बन्धको देखकर उसे सराग सम्यक्त्व कहा है और रागरहित संयमीके वीतराग सम्यक्त्व कहा है। क्योंकि जैसा वीतराग स्वभाव है वैसा ही वीतरागी परिणमन भी हुआ है, अतः वीतरागताका सम्बन्ध देखकर उसे वीतराग सम्यग्दर्शन कहा गया है।

प्रश्न :–ज्ञान प्राप्तिका फल तो रागका अभाव होना है न ?

उत्तर :–रागका अभाव अर्थात् रागसे भिन्न आत्माके अनुभवपूर्वक भेदज्ञानका होना। इसमें रागके कर्तापनेका–स्वामीपनेका अभाव हुआ, रागमेंसे आत्मबुद्धि छूट गई, यही रागके प्रथम नम्बरका अभाव हो गया।

प्रश्न :–सम्यग्दर्शन सहित नरकवास भी भला कहा है तो क्या नरकमें सम्यग्दृष्टिको तो आनन्दकी गटागटी है ?

उत्तर :–यह तो सम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे कहा है, फिर भी जितना कषाय है उतना दुःख तो है ही। तीन कषाय है, उतना दुःख है। मुनिको घानीमें पेले, अग्निमें जलावे, तथापि तीन कषायका अभाव होनेसे उन्हें आनन्द है।

देवानंद भूमिपतिके सुत, निशिवासर बंदहिं सुर पांव,
भरत क्षेत्रतैं करहि वंदना, ते भविजन पावहिं शिवठांव। १३

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *आप बारम्बार कहते हैं कि देव–शास्त्र–गुरुको हृदयमें स्थापित करके मुक्तिकी ओर प्रयाण करना, और श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव पर्यायको गौण करनेको कहते हैं; तो इन दोनों बातोंकी सन्धि कैसे की जाय ?—हमें उलझन होती है।*

समाधान :—देव–गुरु–शास्त्रको हृदयमें रखनेका अर्थ ऐसा है कि जो स्वयं आगे बढ़ना चाहता है उसे देव–शास्त्र–गुरु क्या कह रहे हैं, उन्होंने क्या मार्ग बतलाया है, उसे हृदयमें रखकर—उसका आशय ग्रहण करके—मुक्तिकी ओर प्रयाण करते रहना; परन्तु उससे शुभभावमें अटक जाना ऐसा उसका अर्थ नहीं है। स्वयं द्रव्यदृष्टिपूर्वक स्वरूपमें लीन होता हो तब शुभविकल्पमें रुक जाना ऐसा उसका अर्थ नहीं है। देव–शास्त्र–गुरु ही बतला रहे हैं कि शुभविकल्प वह विभाव है और तू सबसे निराला निर्विकल्पतत्त्व है। तू हमारे ऊपरसे भी दृष्टि हटा ले, रागका भाव छोड़ दे और वीतराग हो जा;—ऐसा देव–शास्त्र–गुरु स्वयं बतला रहे हैं ; इसलिये प्रयोजन तो वीतरागता करनेका है। परन्तु साधक है इसलिये पहलेसे वीतरागता पूर्ण नहीं हो जाती और उसका उपयोग बाहर आता है। भेदज्ञानकी धारा चलती हो तब भी शुभके अनेक प्रकारके विकल्प होते हैं; इसलिये शुभभावमें देव–शास्त्र–गुरुको अपने साथ रखना। तू अपने आप—अपनी मतिकल्पनासे मार्ग मत ढूँढ़ना। देव–शास्त्र–गुरु क्या कह रहे हैं उसका तू आशय समझकर उस मार्गपर चलना–मुक्तिका प्रयाण चालू रखना। देव–शास्त्र–गुरु क्या कहते हैं उस आशयको समझकर फिर स्वभावके साथ मिलान करके, स्वयं अपनेसे निर्णय करके, निश्चित् करके मुक्तिका प्रयाण चालू रखना। अपनी मति-कल्पनासे मार्गपर मत चलना ऐसा तात्पर्य है।

पर्यायके ऊपरसे दृष्टि छूटकर, मैं शुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ—ऐसे नयपक्षके विकल्प तथा गुणभेदके विकल्प भी छूट जाते हैं तब द्रव्यदृष्टि होती है, वह मुक्तिका मार्ग है—ऐसा देव–शास्त्र–गुरु बतलाते हैं। इसलिये वे क्या कह रहे हैं उस आशयको समझकर मुक्तिकी ओर प्रयाण चालू रखना ऐसा कहनेका आशय है।

श्री भुजंगम जिन-स्तुति	महिमा माता महाबलराजा, लच्छन चंद धुजा पर नीको, विजय नग्र भुजंगम जिनवर, नांव भलो जगमें जिनहीको;

पुनश्च, क्षपकश्रेणि चढ़कर बारहवें गुणस्थानमें पहुँचे उससे पूर्व बीचमें द्रव्य–गुण–पर्यायके अबुद्धिपूर्वक विचार आते हैं, श्रुतके विचार आते हैं, वे विचार टूटकर पूर्ण वीतराग हो तब केवलज्ञान होता है। वे श्रुतके विचार वस्तुस्थिति अनुसार होते हैं, अन्य प्रकारके नहीं होते। इसलिये जिस मार्गपर महापुरुषोंने प्रयाण किया उसी मार्गपर चलना ऐसा उसका तात्पर्य है।

प्रश्न :— *विकल्प कैसे दूर हों?*

समाधान :—अपनी पर्याप्त तैयारी हो तब विकल्प दूर होते हैं। अनादिकालसे एकत्वबुद्धिका अभ्यास है, शरीरके प्रति एकत्वबुद्धि है। प्रतिक्षण शरीर सो मैं और मैं सो शरीर, विभाव सो मैं और मैं सो विभाव—ऐसी एकत्वबुद्धि है। वह एकत्वबुद्धि टूटे और स्वभावकी महिमा आये कि 'मैं तो एक ज्ञायक हूँ'—इसप्रकार स्वभावकी लगन लगे, अंतरसे छटपटी लगे तो विभावका रस झर जाता है, उतर जाता है। यद्यपि पीछे अमुक विभाव खड़ा रहता है, परन्तु उसका सब रस फीका पड़ जाता है और उसे अपने स्वभावकी महिमा–प्रेमके बिना कहीं नहीं रुचता—इतनी तैयारी हो तब ज्ञायककी दृष्टि होती है। ज्ञायककी दृष्टि कब हो?—स्वभावकी महिमा आये बिना तथा विभावका रस उतरे बिना ज्ञायककी दृष्टि नहीं होती। बाह्यमें दृष्टि जाती है उसका सब रस उतर जाये और स्वभावकी महिमा आये तो विभावका रस टूट जाय। स्वभावकी लगन लगे तो विभावका रस निरस हो, और विभावका रस निरस हो तो स्वभावकी दृष्टि प्रकट हो और विकल्प टूटें।

प्रश्न :— *प्रारम्भ तो विकल्पसे ही करना पड़ता है न?*

समाधान :—मैं शुद्ध हूँ, ज्ञायक हूँ, ऐसे विकल्प प्रारम्भमें हुआ करते हैं, परन्तु विकल्पके पीछे निर्विकल्पतत्त्व है ऐसा उसका ध्येय होना चाहिये। (विकल्प तो बीचमें आते हैं।) तथापि विकल्पमात्रसे नहीं होता, 'मैं तो निर्विकल्पतत्त्व हूँ' ऐसा ध्येय होना चाहिये। 'ज्ञायक हूँ' ऐसे विकल्प आयें वह मैं नहीं हूँ, मैं तो निर्विकल्पता एवं आनन्दादि गुणोंसे भरपूर ज्ञायक हूँ वह ध्येय होना चाहिये। विकल्पमात्र करनेसे 'मैंने सब कर लिया' ऐसी दृष्टि नहीं होनी चाहिये; अभी तो गहराईमें पहुँचना बाकी ही है।

गणधर कहै सुनो भविलोको, जाप जपे सबही जिनजीको,
जास प्रसाद लहै शिवमारग, वेग मिलै निजस्वाद अमीको। १४

बाल विभाग

कपिल ब्राह्मणकी कथा

वनवास दरम्यान वनमें भ्रमण करते हुए सीताजीको प्यास लगी और वे आगे बढ़ते हुए एक गाँवमें कपिल ब्राह्मणके घर आये, ब्राह्मणीने सीताजीको पानी पिलाया इतनी देरमें घरका मालिक कपिल ब्राह्मण आया और उसने रामचंद्रजी आदिको अपशब्द कहे जिससे सीताजीने कहा कि ऐसे क्रोधीके घरमें नहीं ठहरना है और वनकी ओर प्रयाण किया, वर्षाऋतुका समय था रास्तेमें एक वटवृक्षकी कंदरा देखी जो घर समान लग रही थी वहाँ ठहरे। वहाँ पर एक दंभकर्ण नामक यक्ष रहता था उसने ऐसे तेजस्वी पुरुषोंको देखकर अपने स्वामीसे बात की तो उसके स्वामीने आकर अवधिज्ञानसे जान लिया कि यह बलभद्र–नारायण है इसलिये उनके प्रति वात्सल्य हुआ और क्षणमात्रमें वे जहाँ सो रहे थे वहाँ एक मनोज्ञ नगरीका निर्माण किया। यक्षाधिपतिने रामके लिये नगरी बनाई इसलिये यह रामपुरी कही जाने लगी। प्रातः ब्राह्मण जब लकड़ी लेने वनमें गया तो सुंदर नगरी दिखाई दी। रास्तेमें एक यक्षिणी मिली उससे पूछा कि इस नगरीके राजाको कैसे मिल सकता हूँ ? फिर यक्षिणीके कहे अनुसार उसने मुनिराजके पास जाकर धर्मश्रवण किया और घर आया.....

हर्षसे जिसके नेत्र विकसित हो चुके है ऐसा वह अपनी स्त्रीको कहने लगा : हे प्रिये ! मैंने आज गुरुके पास अद्‌भुत जिनधर्म सुना है जो तेरे पिताने, मेरे पिताने अथवा पिताके पिताने कभी सुना नहीं था और हे ब्राह्मणी ! मैंने एक अद्‌भुत वन देखा। उसमें एक महामनोज्ञ नगरी देखी। जिसे देखकर आश्चर्य उत्पन्न होता है। लेकिन मेरे गुरुके उपदेशसे आश्चर्य होता नहीं है। तब ब्राह्मणीने कहा हे विप्र ! आपने क्या क्या देखे और क्या क्या सुना उसे कहिये। तब ब्राह्मणने कहा हे प्रिये ! मैं हर्षके कारण कहनेमें असमर्थ हूँ। पश्चात् ब्राह्मणीने बहुत आदर करके बारम्बार पूछने पर ब्राह्मणने कहा कि हे प्रिये ! मैं लकड़ी लेने वनमें गया था। उस वनमें एक रामपुरी नामकी नगरी देखी। उस नगरीके समीप उद्यानमें एक सुंदर स्त्रीको देखा। यह अतिमिष्टभाषी कोई देवी होगी। मैंने पूछा कि यह नगरी किसकी है ? तब उसने उत्तर दिया कि यह रामपुरी है, यहाँ राजा राम श्रावकोंको मनवांछित धन देते हैं। पश्चात् मैं मुनिके पास गया और मैंने उनके वचन सुने और मेरा आत्मा अति तृप्त हुआ।

मिथ्यादृष्टिके कारण अभी तक मेरा आत्मा आतापयुक्त था वह आताप शांत हो गया। जिनधर्मको पाकर मुनिराज मुक्तिकी अभिलाषासे सर्वपरिग्रह तजकर महान तप करते है। वह अरिहंतका धर्म तीनलोकमें एक महान निधि है उसको मैंने प्राप्त किया। यह बहिर्मुख जीव वृथा क्लेश करते है, पश्चात् उसने मुनिराजके पाससे जिनधर्मका जैसा स्वरूप सुना था वैसा ब्राह्मणीको कहा। जैनधर्मका स्वरूप उज्ज्वल है। ब्राह्मणका चित्त निर्मल हुआ है। पश्चात् ब्राह्मणी सुनकर कहने लगी मैं भी आपके प्रसादसे जिनधर्मकी रुचि करती हूँ। जैसे कोई

श्री इश्वर जिन-स्तुति

इश्वरदेव भली यह महिमा, करहि मूल मिथ्यातमनाश,
जस ज्वाला जननी जगकहिये, मंगलसैन पिता पुनि पास;

विषफलका वांछक महान निधिको प्राप्त हो इसप्रकार काष्टादिका अर्थी और धर्मकी इच्छा रहित ऐसे उन श्री अरिहंतके धर्मका रसायण प्राप्त किया है।

अभी तक मैंने धर्मको जाना नहीं था। अपने घर पर आये सत्पुरुषोंका अनादर किया था, उपवासादिसे खेदखिन्न दिगम्बरोंको कदापि आहार दिया नहीं था, इन्द्रों द्वारा वंदित अरिहंतदेवको छोड़कर ज्योतिषी, व्यंतरादिकोंको नमस्कार किये। जीवदयारूप जिनधर्मका अमृत छोड़कर अज्ञानके योगसे पापरूप विषका सेवन किया था। मनुष्य देहरूप रत्नदीपको प्राप्त साधुओंने पहिचाना धर्मरूप रत्न तजकर विषयरूप कांचका टुकड़ा लिया था। सर्वभक्षी, दिन-रातको आहार करनेवाले अव्रती, कुशीलवानोंकी सेवा की, भोजनके समय अतिथि आये और जो बुद्धिहीन अपने वैभवके प्रमाणमें अन्नपानादि न दे, उसे धर्म होता नहीं है । अतिथिपदका अर्थ ऐसा कि तिथि अर्थात् कि उत्सवके दिन उत्सवका त्याग करे वह। अथवा जिसे तिथि अर्थात् कि विचार नहीं वे सर्वथा निःस्पृह धनरहित साधु, जिसके पास पात्र नहीं, हाथ ही जिसका पात्र है ऐसे निर्ग्रंथ स्वयं तिरे और अन्यको भी पार पहुँचाते है। अपने शरीरमें भी निःस्पृह, किसी वस्तुमें लोभ नहीं, वे निष्परिग्रही मुक्ति हेतु दसलक्षणधर्मका आचरण करते हैं।

इस प्रकार ब्राह्मणने ब्राह्मणीको धर्मका स्वरूप कहा। वह सुशर्मा नामकी ब्राह्मणी धर्म सुनकर मिथ्यात्वरहित हुई। जैसे चंद्रमाको रोहिणी शोभा देती है, बुधको भरणी शोभती है वैसे कपिलको सुशर्मा शोभती थी। ब्राह्मण ब्राह्मणीको वह ही गुरुके पास ले गया जिसके पाससे स्वयंने व्रत लिये थे। उसने स्त्रीको भी श्राविकाके व्रत दिलवाये। कपिलको जैनधर्मके प्रति अनुरागी हुआ जानकर अन्य दूसरे अनेक ब्राह्मण समभाव धारण करने लगे। मुनिसुव्रतनाथ भगवानके मतको पाकर अनेक सुबुद्धि जीवों श्रावक–श्राविका हुए। पुनश्च जो कर्मके भारसे संयुक्त, मानसे मस्तक ऊँचा रखनेवाले प्रमादी जीव अल्पकालमें ही पाप करके घोर नरकमें जाता है। कई उत्तम ब्राह्मण सर्व संगका परित्याग करके मुनि हुए। वैराग्यसे वे वनमें विचरते थे कि यह जिनेन्द्रका मार्ग अभी तक अन्य जन्ममें प्राप्त हुआ नहीं था, अब अत्यंत निर्मल ध्यानरूप अग्निमें कर्मरूप सामग्री भावघृत सहित स्वाहा करेंगे। जिसे उत्कृष्ट वैराग्य प्रकट हुआ वे मुनि हुए और कपिल ब्राह्मण श्रावक हुआ। (क्रमशः)

नगरी जस सुसीमा भनिये, दिनपति चर्ण रहै नित तास,
तिनको भावसहित नित बंदै, एकचिन्ह निहचै तुम दास। १५

(पृष्ठ ८ का शेष भाग) (इष्टोपदेश)

धर्मी गृहस्थाश्रममें हो या वनमें अकेले हो लेकिन सभी ओरसे निराला रहता है। वह सदा स्वयंको सर्वांग शुद्धस्वरूप विचार करता है। उसे परके साथ तो कोई सम्बन्ध नहीं है। तथा अशुभरागसे तो भिन्न है लेकिन जिस भावसे तीर्थंकरगोत्रका बंध हो ऐसे उत्कृष्ट शुभरागसे भी धर्मी भिन्न-तैरते रहते है क्योंकि स्वभावकी और शुभरागकी जाति पृथक् है, जाति दूसरी है और उसका फल पृथक् है ऐसे धर्मीको श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव वर्तता है।

अज्ञानीको शुभराग और शरीरकी क्रियासे लाभ मानकर स्वयंका बहुत बड़ा नुकसान किया है। श्रद्धामें आत्माको नास्तिकरूप कर दिया है और राग तथा शरीरकी क्रियाको अस्तिरूप कर दिया है उसे करुणावंत संतों कहते है अरे भगवान ! तूने अपना अस्तित्व कहाँ लगा दिया ? जरा विचार तो कर !

वनवासी दिगम्बर संत आचार्य पूज्यपादस्वामी धर्मीकी दशाकी महिमा करते हुए कहते है कि जिन्होंने रागसे और परसे भिन्न अपने आत्माकी श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता प्राप्त की है ऐसे धर्मी बोलने पर भी मौन, चलते है फिर भी चलते नहीं है और देखते है फिर भी देखते नहीं है ऐसी उनकी चाल जगतसे निराली है। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ १३ का शेष भाग) (अनुभव प्रकाश)

आत्मस्वरूपमें लीनतासे केवलज्ञान प्रकट होता है। जिसके मिथ्यात्वभावका नाश नहीं होता उसके मनका विकार नहीं मिटता। मिथ्यात्वके नाशका उपाय नहीं करे और दूसरे पचड़ोंमें पड़ा रहे उसके संसारका अन्त नहीं होता। मिथ्यात्वरूपी मोह महान शत्रु है। यह मोह ही आत्माका विपरीतभाव है। वही जीवको अनादिसे संसारमें परिभ्रमण करा रहा है। धर्मके बहाने अनेक क्रियाएँ करते हैं वे सब मोहके वश नाच रहे हैं। आत्मा ज्ञायक है ऐसी बात सुननेमें भी जिसे अरुचि आती हो और कोई कहे कि राग कम करोगे तो धर्म हो जाएँगा वहाँ उत्साह आता हो; वह मिथ्यात्वभावकी रुचिवाला है; वह संसारमें भटकता है। मिथ्यात्वका सेवन करके हर्ष मान-मानकर संसारमें परिभ्रमण करता रहेगा। यदि कोई त्यागकी बात करे, धनसे धर्म होनेकी अथवा धर्मसे धन मिलनेकी बात करे तो वहाँ हर्ष मान-मानकर जीव मिथ्यात्वका सेवन कर रहे हैं। (क्रमशः) ✻

(पृष्ठ २० का शेष भाग) (वचनामृत प्रवचन)

लगाऊँ इतना भी अभी भेद-विकल्प है; उसे छोड़ने पर अंतरमें मार्ग अवश्य हाथ आयेगा। तुझे अवश्य मार्ग मिलेगा। दूसरा बोल पूरा हुआ। (क्रमशः) ✻

भरतक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर सम्बन्धी माहिती

चौबीस तीर्थंकरोंके नाम गतांकमें दिये गये थे इसलिये क्रम अनुसार भगवानका नाम समझ लेना।

क्रम	आहारदान दाता	नगर	गणधर संख्या	मुख्य गणधर	मोक्ष स्थान	टूंकका नाम
१	श्रेयांसराजा	हस्तिनापुर	८४	वृषभसेन	कैलास पर्वत	
२	ब्रह्मदत्त	अयोध्या	९०	सिंहसेन	सम्मेदशिखर	सिद्धवरकूट
३	सुरेन्द्रदत्त	श्रावस्ति	१०५	चारूसेन	सम्मेदशिखर	धवलकूट
४	इन्द्रदत्त	अयोध्या	१०३	वज्रनाभि	सम्मेदशिखर	आनंदकूट
५	पद्मदत्त	विजयपुरी	११६	चमर	सम्मेदशिखर	अविचलकूट
६	सोमदत्त	मंगलपुरी	११०	वज्रचमर	सम्मेदशिखर	मोहनकूट
७	महेन्द्रदत्त	सोमखंड	९५	बलदत्त	सम्मेदशिखर	प्रभासकूट
८	सोमदत्त	नलिनापुर	९३	दत्त	सम्मेदशिखर	ललितकूट
९	पुनर्वसु	शैतपुर	८८	विदर्भ	सम्मेदशिखर	सुप्रभ्रभकूट
१०	नंदन	अरिष्टपुर	८१	अनगार	सम्मेदशिखर	विद्युत्प्रभकूट
११	सोन्दर	सिद्धार्थपुर	७७	कुंथु	सम्मेदशिखर	संकुलकूट
१२	जय	महापुर	६६	सुधर्म	चंपापुरी	
१३	विशाख	नंदनपुर	५५	मन्दरार्य	सम्मेदशिखर	सुविरकूट
१४	धान्यसेन	अयोध्या	५०	जय	सम्मेदशिखर	स्वयंप्रभकूट
१५	धर्ममित्र	सौमनसपुर	४३	अरिष्टसेन	सम्मेदशिखर	सुदत्तवरकूट
१६	सुमित्र	सौमनसपुर	३६	चक्रायुध	सम्मेदशिखर	कुन्दप्रभ(प्रभास)
१७	अपराजित	हस्तिनापुर	३४	स्वयंभू	सम्मेदशिखर	ज्ञानधरकूट
१८	नंदी	गजपुर	३०	कुंभार्य	सम्मेदशिखर	नाटककूट
१९	नंदीसेन	मिथिला	२८	विशाख	सम्मेदशिखर	सम्बलकूट
२०	वृषभदत्त	राजगृही	१८	मल्लि	सम्मेदशिखर	निर्जरकूट
२१	दत्त	वीरपुर	१७	सुप्रभ	सम्मेदशिखर	मित्रधरकूट
२२	वरदत्त	द्वारिका	११	वरदत्त	गिरनार	पाँचवीं टोंक
२३	धनदत्त	गुल्मखेट	१०	स्वयंभू	सम्मेदशिखर	कूट
२४	विश्वसेन	कुंडलपुर	११	इन्द्रभूति(गौतम)	पावापुरी	

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-३० से ६-५० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप
सुबह : ८-४५ से ९-४५ : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१८वीं बारका) सीडी प्रवचन
दोपहर : २-४५ से ३-४५ : श्री समयसार कलशटीका पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन
दोपहर : ३-४५ से ४-१५ : श्री जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि : ७-३० से ८-३० : श्री समाधितंत्र पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

❀ श्री सीमंधरस्वामी जिनमंदिरका ८६वाँ वार्षिक अष्टाह्निक महोत्सव ❀

सुवर्णपुरीके श्री सीमंधरस्वामी दिगंबर जिनमंदिरका ८६वाँ वार्षिक अष्टाह्निक महोत्सव माघ कृष्णा-१० ता. १२-२-२०२६, गुरुवार से ता. १९-२-२०२६, गुरुवार, फाल्गुन शुक्ला-२ तक श्री बीस विहरमान जिन मंडल विधान, जिनेन्द्र भक्ति एवं तत्त्वज्ञानकी उपासना आदि विभिन्न कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

❀ श्री पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयका वार्षिक प्रतिष्ठामहोत्सव ❀

श्री पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयका ४२वाँ वार्षिक प्रतिष्ठोत्सव फाल्गुन शुक्ला-३, शुक्रवार ता. २०-२-२०२६ से २३-२-२०२६ सोमवार तक आनंदोल्लास सह विशेष श्री पंचकल्याणक पूजन विधान तथा पूजनभक्तिपूर्वक मनाया जायेगा।

❀ फाल्गुनी नंदीश्वर अष्टाह्निका ❀

सुवर्णपुरीके श्री पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयमें फाल्गुन शुक्ला अष्टमी ता. २४-२-२०२६ मंगलवारसे ता. ३-३-२०२६ मंगलवार तक फाल्गुन मासकी नंदीश्वर अष्टाह्निका महोत्सव श्री पंचमेरु नंदीश्वर विधान पूजा-भक्ति आदि विशेष कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

❀ श्री परमागममंदिर-वार्षिक प्रतिष्ठा तिथि :—

फाल्गुन शुक्ला १३, ता. १-३-२०२६ रविवारके दिन श्री परमागममंदिरका ५३वाँ वार्षिक प्रतिष्ठा दिन श्री महावीर-कुन्दकुन्द दिगम्बर जैन परमागममंदिरमें पूजा-भक्तिके विशेष कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

• 'मैं शुद्ध हूँ—शुद्ध हूँ' ऐसी धारणासे अथवा ऐसे विकल्पसे पर्यायमें आनन्दका झरना नहीं होता। पर्यायमें आनन्दका झरना न हो तब तक ज्ञान सच्चा नहीं है। आत्माका परमार्थ स्वभाव लक्षमें लेकर पर्याय उसमें अभेद होते ही पर्यायमें परम आनन्दके मोती झरते हैं। 'द्रव्यस्वभाव शुद्ध है' ऐसा जहाँ दृष्टिमें लिया वहाँ पर्यायमें भी शुद्धता हो गई।१७३। —पूज्य गुरुदेवश्री

पच्चीसवीं बाल संस्कार आध्यात्मिक ज्ञान शिविरकी रजत जयंति सोनगढमें सानंद संपन्न

श्री कहान पुष्प परिवार आयोजित बाल संस्कार अध्यात्मज्ञान शिविरका रजत-जयंती वर्ष होनेसे कहान पुष्प परिवार द्वारा इसके अंतर्गत भारतमें मुंबई–मलाड, पूना–फ्लेम युनिवर्सिटी, हैद्राबाद, चैतन्यधाममें अहमदाबादके मंडलो द्वारा, राजकोट-जामनगर संयुक्त शिवरका आयोजन हुआ। इस रजत जयंतीका समापन परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री एवं भगवती माताकी पूज्य बहिनश्रीकी साधनाभूमि अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरी (सोनगढ)में ता. २५ से ३० दिसम्बर २०२५–पच्चीसवीं बाल संस्कार अध्यात्मज्ञान शिविरका विशिष्ट, भव्यतापूर्ण आयोजन किया गया था। तत्पश्चात् शिविरका प्रारम्भ ट्रस्टीगण, आयोजक परिवार, शिविरार्थी तथा महेमानोंकी उपस्थितिमें मुख्य सौजन्यकर्ता एवं अध्यापको द्वारा दीप प्रज्वलित करके किया गया। शिविरार्थीके लिये प्रतिदिन सुवर्णपुरीके विभिन्न मंदिरोमें जिनेन्द्र अभिषेक, पूजन, भक्तिका कार्यक्रम रखा जाता था। इस शिविरमें सुबह पूज्य गुरुदेवश्रीके सुबह श्री समयसार नाटक, दोपहर श्री कलशटीका रात्रिमें पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चा तथा पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत पर विडियो प्रवचन चलते थे। शिविरमें बालकों, वयस्क और बुझुर्गोको आयु अनुसार दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, सुख और वीर्य ऐसे छह विभाग करके दिनमें तीन घंटे 'स्वाध्याय परम तप' विषय पर विद्वानों द्वारा अध्यापन कार्य कराया जाता था। रात्रिको प्रवचनके पश्चात् सांस्कृतिक कार्यक्रमका आयोजन किया जाता था, जिसमें मुमुक्षु मंडलके बालकों द्वारा भक्ति, एकांकी संवाद, नाटिका, धार्मिक क्विझ आदि प्रोग्रामका आयोजन किया गया था।

• इस शिविरमें आध्यात्मिक कार्निवल रखा गया था। जिसमें जैनधर्मके सिद्धांत पर **Digital** माध्यम द्वारा बालको एवं वयस्कोंके लिये **Interactive Games** रखी गई थी जो इस शिविरका विशिष्ट आकर्षण था। • शिविरमें एक दिन प्रभातफेरीका आयोजन किया गया था जिसमें प्रत्येक शिविरार्थीओं शामिल हुए थे। • शिविर दरम्यान बालकोंको ओनलाईन क्विझ, कार्निवल तथा प्रवचनमें बैठकर सुवर्णपुरी पासपोर्टमें पोईन्ट कलेक्ट किये थे उन्होंने अंतिम दिन पुस्तक विभागमें जाकर पोइन्ट देकर आध्यात्मिक वस्तु खरीदी थी। • बालकोंको विशेषरूपसे प्रोत्साहित करने हेतु जेकेट और पूज्य गुरुदेवश्रीका दैनिक स्वाध्यायका संकलन करके 'रत्नकणिका-२०२६' डायरी और बेग दी गई थी। • प्रतिवर्षकी भांति इस वर्ष भी **SMS** स्पर्धामें भाग लेनेवालेकी डायरीका प्रदर्शन किया गया था, जिसमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय आनेवालेको प्रोत्साहक इनाम प्रदान किये गये थे। • बालकोंको विशेषरूपसे **Participation Certificate** दिये गये थे। • इस शिविरकी रजत जयंतिके स्मरणके रूप १० ग्राम चांदीका सिक्का बालकोंको दिया गया था। • ता. ३०-१२-२५ के दिन घोघा तीर्थ, भावनगर मंदिर तथा पूज्य गुरुदेवश्री जन्मधाम उमराला मंदिरोंके दर्शनका आयोजन किया गया था जिसमें वहांके ट्रस्टीगण द्वारा शिविरार्थीओंका स्वागत किया गया था। • इस शिविरमें ४०० बालकों और अन्य ९०० के करीब युवा और वडीलोंने लाभ लिया था।

आयोजकों तथा श्री कहान पुष्प परिवारके कार्यकर्ताओं द्वारा शिविरार्थीओंके लिये आने-जानेकी, आवासकी, भोजनकी तथा यात्राकी सुंदर व्यवस्था की गई थी। इस शिविरके स्थायी सौजन्यका लाभ (१) मुमुक्षु ऑफ ग्रान्ड रेपीड **U.S.A.** (२) राजुल शाह, फ्लोरिडा **U.S.A.** तथा मुख्य सौजन्यका लाभ श्री जितेन्द्र व्रजलाल शाह परिवार, घाटकोपर और सह सौजन्यका लाभ (१) एक मुमुक्षुभाई, (२) श्री रमणिकलाल लालचंद दोशी परिवार, हस्ते स्मिताबेन बावीशी (३) एक मुमुक्षु बेन (४) श्री भरतभाई कांतिलाल कामदार, चेन्नाई परिवारको मिला था।

सोनगढ मेसेज स्पर्धा-२०२६

सौजन्यकर्ता :

नमन, नमिता भावेश भायाणी, बोरीवली

१)(i) सोनगढ मेसेज स्पर्धा-२०२६में भाग लेनेके लिए कमसे कम ३०० मेसेज स्वहस्ताक्षरमें तारीखके साथ लिखना आवश्यक है। स्पर्धाका समय १-१-२०२६ से २०-१२-२०२६।

३०० मेसेज लिखकर नोटबुक ता. २५-१२-२०२६ तक सोनगढ भेजनेवाले (इस स्पर्धामें किसी भी उम्रके मुमुक्षु भाग ले सकेंगे।) प्रत्येकको रुपये ३००/-का प्रोत्साहन इनाम दिया जाएगा। प्रत्येकको रुपये ३००/-का प्रोत्साहन इनाम दिया जाएगा।

(ii) जिन स्पर्धकोंने अपनी मेसेज बुकको विशेषरूपसे सुशोभन की होगी उन्हें निम्नलिखित पुरस्कार दिया जाएगा।

(A) १८ वर्ष तकके बालकोंका विभाग : प्रथम २०००/-, द्वितीय १५००/-, तृतीय १०००/- रुपये

(B) १८ से ३५ वर्ष तकके उम्रवाले मुमुक्षुका विभाग : प्रथम २०००/-, द्वितीय १५००/-, तृतीय १०००/- रुपये (C) ३५ वर्षसे अधिक उम्रवाले मुमुक्षुका विभाग : प्रथम २०००/-, द्वितीय १५००/-, तृतीय १०००/-

(२) सोनगढ मेसेज सुविधा Whats Appमें प्रारंभ करनेके लिए अपना

१. नाम ..... २. गाँव/शहरका नाम : .....

३. गुजराती/हिन्दी .... ४. मोबाईल नंबर : .....का

विवरण (Details) Whats App से Mo 9276867578 / 9322281129 पर भेजे।

मेसेज सम्बन्धित जानकारी हेतु उपरोक्त मोबाईल नं. पर फोन करना अथवा cotact@kanjiswami.org पर email करनेकी विनती है।

नया रजीस्ट्रेशन करानेवाले मुमुक्षुओंको प्रातः मेसेज एवं सायं सोनगढ रत्नकणिकाका स्वाध्यायका लाभ मिलेगा। तथा प्रत्येक महिनेकी १ तारीखको आत्मधर्मकी सोफ्ट कोपी भी मिलेगी।

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनका ९४वाँ सम्यक्त्वजयंती महोत्सवकी मंगल पत्रिका लेखनविधि सानंद संपन्न

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनका ९४वाँ सम्यक्त्वजयंती महोत्सव जो श्री नोर्थ-साउथ मुमुक्षु मंडल द्वारा मनाया जानेवाला है। इस महोत्सवकी पत्रिका लेखनविधि पोष शुक्ल-८, ता. २८-१२-२०२५, रविवारके दिन सुबह पूजन पश्चात् सभी मुमुक्षु मंजुलाबेन मनुभाई शेठके निवासस्थान गये थे। वहाँ पत्रिकाको अक्षत पुष्पोंसे बधाई की गई। पश्चात् गाजे-बाजेके साथ भक्ति करते हुए पत्रिकाको पूज्य बहिनश्रीके निवासस्थान होते हुए मंडपमें लायी गई, पश्चात् पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन हुआ। तत्पश्चात् पत्रिका लेखनविधि सौजन्यकर्ता श्री मंजुलाबेन मनुभाई शेठ परिवारके सदस्योंकी ओरसे पत्रिकाका भाववाही वांचन किया गया। पश्चात् पत्रिका लेखनविधि सर्वप्रथम सौजन्यकर्ता परिवार, ट्रस्टीगण बादमें अन्य महानुभावों द्वारा भजनमंडलीके भक्तिके सूरमें हर्षोल्लास सह सानंद संपन्न हुई।

नोर्थ-साउथ दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल सम्यक् भक्तिभाव सह
अध्यात्म अतिशय तीर्थ सुवर्णपुरीमें सानंद मना रहे है
सम्यक् आराधक प्रभामंडित, धर्मरत्न
शुद्धात्मदृष्टिवंत पूज्य बहिनश्री चंपाबेनका ९४वाँ
* सम्यक्त्वजयंती महोत्सव *

भवान्तकारी एवं स्वानुभवमुद्रित कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शनका अनुपम मार्ग दिखाकर जिन्होंने हम पर अनंत उपकार किया हैं ऐसे हमारे परम-तारणहार पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामीकी शुद्धात्मस्पर्शी वज्रवाणीसे जिनके पूर्वाराधित परम कल्याणकारी विशुद्ध सम्यक्त्वके संस्कार पुनः जागृत हुए और तत्त्वमंथनके असाधारण पुरुषार्थ मात्रसे जिन्होंने १८ वर्षकी लघुवयमें निज शुद्धात्मदेवके आनंदस्यंदी साक्षात्कारको वि.सं. १९८९ फाल्गुन कृष्ण १०के दिन वांकानेरमें स्वयंकी परिणतिमें स्वानुभूति सह सम्यग्दर्शन प्रकट किया वे उपकारमूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी ९४वीं वार्षिक 'सम्यक्त्वजयन्ती'का यह मंगल अवसर ता. ९-३-२०२६, सोमवारसे ता. १३-३-२०२६, शुक्रवार—पाँच दिन मनाया जायेगा। यह पंच दिवसीय महोत्सव श्री तीन चौबीसी मंडल-विधान पूजा, परमकृपालु पूज्य गुरुदेवश्रीके सम्यक्त्वमहिमा भरपूर आध्यात्मिक सीडी प्रवचन, देव-गुरु-भक्ति, यात्राकी विडियो द्वारा पूज्य गुरुदेवश्रीके पावन दर्शन, पूज्य बहिनश्रीकी स्वानुभवरसभरी विडियो धर्मचर्चा, धार्मिक शिक्षण वर्ग, विशेष भक्ति, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि अनेकविध रोचक कार्यक्रम सह श्री बृहद् मुंबई दिगम्बर मुमुक्षु मंडल द्वारा आनंदोल्लास सह सोनगढमें मनाया जायेगा। सम्यग्दर्शनकी महिमाके इस स्वर्णिम शुभ अवसर पर समस्त मुमुक्षु समाजको सोनगढ़ पधारनेका हमारा हार्दिक निमंत्रण है।

• निमंत्रण पत्रिका—लेखनविधि ता. २८-१२-२०२५, रविवारके दिन सोनगढ़में सानंद संपन्न हुई।

निमंत्रक

नोर्थ-साउथ दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडलके

जय-जिनेन्द्र

श्रद्धा सुमन

शांत और सरलस्वभावी, वात्सल्यप्रेमी, कुशल वहीवटकर्ता
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढके प्रमुखश्री

आत्मार्थी श्री हसमुखभाई पोपटलाल वोरा

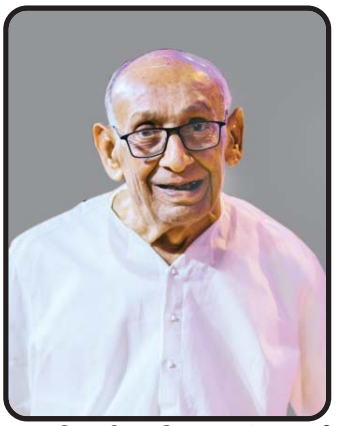

पूज्य गुरुदेवश्री तथा पूज्य बहिनश्री प्रति अत्यंत अर्पणता रखनेवाले, उभय धर्मात्माओंके कृपापात्र, दीर्घकालसे गुरुदेवश्रीके शासनकी सेवा करनेवाले एवं आराधक, विद्वान और आत्मार्थी, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्टके प्रमुख श्री हसमुखलाल पोपटलाल वोराका ९४ वर्षकी उम्रमें इस दुर्लभ मनुष्यपर्यायसे गमनके वैराग्यप्रेरक समाचार जानकर हम सभीको वैराग्यभीगा दुःखद वेदन हुआ है। उनकी विदायसे हमें पूर्ति न की जाय ऐसी क्षति हुई है।

आदरणीय श्री हसमुखभाईको अपने पिताश्रीके कारण पूज्य गुरुदेवके सत्संगका लाभ प्राप्त हुआ था। वे पूज्य गुरुदेवश्री और उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञानसे अति प्रभावित हुए और पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रति उनके अंतरमें अहोभाव जागृत हुआ। फलस्वरूप सहजरूपसे वे जिनशासनकी सेवामें संमिलित हो गये।

श्री हसमुखभाईके पिताश्री पोपटलालभाईका देहपरिवर्तन होनेके पश्चात् श्री रामजीभाई दोशीने श्री हसमुखभाईको श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्टका ट्रस्टी बनाया। आदरणीय श्री रामजीभाई दोशी श्री स्वाध्याय मंदिर ट्रस्टके प्रमुख थे तब परमागम मंदिरका निर्माणकार्य प्रारम्भ हुआ। पोने चार लाख अक्षरोंको संगेमरमरमें उत्कीर्ण करना था। हाथसे उत्कीर्ण करवानेमें बहुत समय लग सकता था इसलिये श्री रामजीभाईने इस कार्यकी जिम्मेदारी श्री हसमुखभाईको सोंपी। श्री हसमुखभाई अक्षर उत्कीर्ण करनेकी मशीन इटली जाकर ले आये तब पूज्य गुरुदेवश्रीने प्रसन्नता व्यक्त की थी। पंच परमागम उत्कीर्ण करनेका कार्य उन्होंने कार्यनिष्ठा, धीरज, लगनी व सावधानीसे यह कार्य मात्र पांच महिनेकी अल्प अवधिमें पूर्ण हो गया।

आपकी पूज्य गुरुदेवश्री प्रति अर्पणता, प्रविणता, कार्यकुशलताकी शक्तिको ध्यानमें लेकर श्री

रामजीभाई दोशीके आग्रहसे तथा सर्व ट्रस्टीओंकी अनुमतिसे श्री हसमुखभाईने १९८१में प्रमुखपदका कार्यभार सम्हाला था। आपके प्रमुखपदके कार्यकाल दरमियान आपने अति कुशलतापूर्वक संस्थाका प्रशासनकार्य में भाग लिया, संस्थाकी शक्ति और मजबूतीसे टिकाकर रखना एवं उसे वृद्धिगत करनेमें आपका अप्रितम योगदान है। आज भी सोनगढमें मानों पूज्य गुरुदेवश्री सदेह उपस्थित हो ऐसा वातावरण बनाये रखनेमें प्रमुखके रूपमें आपकी कुशलता और प्रविणता दृश्यमान हो रही है।

पूज्य गुरुदेवश्रीकी निश्रामें घाटकोपर-मलाड मंदिरके पंचकल्याणक महोत्सव हुये, इस महोत्सवमें सौधर्म इन्द्र और शचि इन्द्राणीका लाभ श्री हसमुखभाई और श्रीमती कलावतीबेनको मिला था। सुरतमें पंचकल्याणक महोत्सवमें श्री ग्रंथाधिराज समयसार शास्त्रको विराजमान करनेका लाभ मिला था तब कलावतीबेनने कहा कि "विराजमान करनेका लाभ मिला है तो श्री समयसारका चिंतन-मनन करना चाहिये।" इसलिये उन्होंने दो वर्ष तक समयसारका तलस्पर्शी अभ्यास किया था।

श्री हसमुखभाईके कार्यकालमें श्री नंदीश्वर जिनालयका कार्य प्रारम्भ हुआ था तथा पंचकल्याणक महोत्सव संपन्न हुआ था। आपने सोनगढमें मुमुक्षुओंके लिये आधुनिक ठहरनेकी व्यवस्था हेतु एक बड़ी रकमका दान देकर "श्री कलावती भवन" नामका आवास बनवाया था। आपने अंत तक नित्य देव दर्शन, पूजन, पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन आदि आध्यात्मिक प्रवृत्तिमय जीवन अपने निजकल्याण हेतु व्यतीत किया था।

आपके अंतरमें संत साधनाभूमि सुवर्णधाम प्रति अत्यंत भक्ति रहती थी। इसलिये संस्थाकी प्रसिद्धि देश-विदेशमें हो ऐसी भावना सदा आपके हृदयमें वर्तती थी। इसलिये सुवर्णपुरीमें बाहुबली भगवानकी भव्य प्रतिमा और जम्बूद्वीपकी भव्य रचना हो ऐसा ट्रस्टी मंडलने आयोजन किया जिसे मुमुक्षुसमाजने अति भावसे स्वीकृत किया।

आपको समस्त मुमुक्षु समाजके प्रति गहरा वात्सल्यभाव प्रेम था। आप प्रत्येक छोटे-बड़े मुमुक्षुओंको प्रेमसे आदर देते थे। सभी मुमुक्षु भाई-बहिनको भी आपके प्रति एक प्रतिष्ठित व्यक्तित्वके रूपमें अति आदरभाव एवं वात्सल्यभीगी अनुभूति थी। यह वात्सल्यपूर्ण व्यक्तिका पुनः मिलन नहीं होगा। कुदरतका क्रम ही ऐसा है इतना मानकर संतुष्ट रहना होगा। आपका स्वास्थ्य ठीक न होने पर भी अंतमें मुंबई जाकर तुरन्त सोनगढ वापिस आ गये थे। आपने ज्ञानीयोंकी अंतरंग कृपा संपादित की थी—जो आपकी एक महान उपलब्धि थी। ऐसे आपके गुणों और सत्कार्यों एवं सद्भावनाओंका स्मरण करते हैं।

ऐसे विषम प्रसंगमें हमें दुःखसे भरा संसारको पार उतरनेकी रीत ज्ञानियोंके प्रतापसे कर पाये और यथार्थ पुरुषार्थ प्रगट करनेका बल प्राप्त हो ऐसी भावना रहती है। सद्गत आत्मा प्राप्त किये धार्मिक संस्कारोंमें वृद्धिगत होकर शीघ्र शाश्वत सुखको प्राप्त करें, यह ही अंतरकी भावना...

लि.

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

• अहो! परम सत्यकी ऐसी बात सुननेको मिलना भी बहुत दुर्लभ है। अनन्तकालमें मनुष्य-भवमें, ऐसा अमूल्य अवसर मिला है! तब भी यदि अपूर्व सत्यको समझकर स्वतंत्र वस्तु-स्वभावकी सामर्थ्यका स्वीकार न हो तो चौरासीके अवतारकी भटकन नहीं मिटेगी।७३२।

• परद्रव्य-ओरकी वृत्ति अशुभ हो चाहे शुभ - पर वह आत्मा नहीं है; स्व-रूपसे अनुभवमें आता हुआ ज्ञान ही आत्मा है, ऐसे ज्ञानके स्वसंवेदनकी कला ही मोक्षकी कला है। आत्मानुभवकी यह कला ही सच्ची कला है, उसका बारम्बार अभ्यास करना योग्य है। दुःखसे छूटना हो व सुखी होना हो तो परभावोंसे भिन्न आत्माको जानकर, उसीका अभ्यास करना योग्य है।७३३।

• जन्म-मरणके क्लेशसे छूटना हो व मोक्षरूप अविनाशी-कल्याण चाहते हो तो अपने ज्ञानरूप-आत्माको ही कल्याणस्वरूप जानकर उसीमें संतुष्ट होना। रागमें कभी भी संतुष्ट होना योग्य नहीं, उसमें तो विषयोंकी इच्छा व अनुकुलता ही है। राग स्वयं ही आकुलता है तो उसमें संतोष कैसा? ज्ञान तो निराकुल (स्वरूप) है, अतः उसके अनुभवसे ही संतोष प्राप्त कर।७३४।

• प्रश्न :- आप जो बात समझाते हैं वह बात तो पूर्णतः सत्य है, परन्तु उससे समाजको क्या लाभ?

उत्तर :- देखो भाई! पहली बात तो यह है कि स्वयंको अपने ही को देखना है। समाजका चाहे जो हो, उसकी चिन्ता छोड़कर स्वयंको अपनी ही सँभाल करनी है। समुद्रके बीच डूबता हो तब समाज व कुटुम्बकी चिन्तामें न रूक कर "मैं समुद्रमें डूबनेसे कैसे बचूँ" ? - इसीका उपाय करता है। ऐसे ही संसार-समुद्रमें धक्के खाते-खाते मुश्किलसे मनुष्यभव मिला है तब यही विचार करना है कि "मेरी आत्माका हित कैसे हो", मेरी आत्मा संसार-भ्रमणमे कैसे छूटे? पर-चिन्तामें रूकनेसे तो आत्माहित चूक जाता है। यह बात तो निजहित कर लेनेकी है। प्रत्येक जीव स्वतंत्र है, अतः समाजके अन्य जीवोंका हित हो तो ही अपना हित हो सके - ऐसी कोई पराधीनता नहीं। अतः है जीव! तूँ तेरे हितका उपाय कर। ७३६।

३६
आत्मधर्म
फरवरी २०२६
अंक-६, वर्ष २०

Posted at Songadh PO
Publish on 5-2-2026
Posted on 5-2-2026

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org